कन्या भ्रूण हत्या, कितनी समस्या? कितना समाधान ?

लोकतंत्र में वही नेता सफल होता है जो समाज को वर्गो में बांटकर वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष में माहिर हो। जो नेता धर्म जाति लिंग आदि के आधार पर समाज का विभाजन नहीं कर सकता वह सफल हो ही नहीं सकता। तानाशाही में वर्ग भेद घातक होता है और लोक स्वराज्य प्रणाली में अनावश्यक। किन्तु लोकतंत्र में तो यह बहुत मारक हथियार माना जाता हैं। मेवाड़ कालेज के संचालक अशोक गदिया जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "बस अब बहुत हो चुका" में स्पष्ट किया है कि सफल राजनेता हमेशा समस्याओं का इस तरह समाधान करता है कि उस समाधान से ही किसी नई समस्या का जन्म या विस्तार होता है। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि सफल नेता हमेशा सामाजिक समस्याओं का आर्थिक प्रशासनिक समाधान खोजता है और प्रशासनिक समस्याओं का सामाजिक आर्थिक। उन्होंने कितना सटीक लिखा है। हमारे राजनेता कन्या भ्रूण हत्या का तो प्रशासनिक समाधान खोज रहे हैं और नक्सली आतंकवाद का सामाजिक आर्थिक । वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में हर राजनेता सफलता पूर्वक इस दिशा में कदम बढ़ा रहा हैं। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, गरीब अमीर, किसान मजदूर के नाम पर समाज व्यवस्था तो तोड़ी जा सकती है किन्तु परिवार व्यवस्था नहीं। यदि परिवार व्यवस्था को सफलता पूर्वक तोड़ना है तो लिंग भेद उसका सबसे अच्छा आधार है। पिछले साठ वर्षो से भारतीय राजनीति का प्रत्येक मुहरा इसी प्रकार आगे बढ़ाया जा रहा है कि स्त्री पुरूष के बीच भेद की दीवार चौड़ी हो। किसी तरह महिला पुरूष वर्ग निर्माण में सफलता मिल जावे तो वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष कराने में ज्यादा कठिनाई नहीं होगी।

राजनेताओं में एक गुण यह भी होता है कि वे किसी समस्या का कोई निश्चित समाधान होने ही नहीं देते क्योंकि किसी समस्या का समाधान उनकी बेरोजगारी का आधार बन सकता हैं। आदिवासी क्षेत्रों का तीव्र विकास तो आवश्यक है किन्तु उनकी मूल संस्कृति बिल्कुल कमजोर न हो। आज तक ऐसा कोई मार्ग निकला ही नहीं जिसमें विकास तो हो किन्तु मूल संस्कृति में बदलाव न हो। हमारे देश के राजनेता बड़ी सफाई से दोनों कार्य एक साथ कर रहे हैं। यहॉ तक कि पहाड़ी कोरवा की संस्कृति कहीं समाप्त न हो जावे इसके लिये सरकार पानी की तरह पैसा बहा रही है। उन्हें अधिक संतान पैदा करने को भी प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। भय है कि कहीं एक विचित्र जीव समाप्त न हो जावे।

राजनेताओं की ऐसी ही तिकड़मों का शिकार हो गई है महिला पुरूष संबंध समस्या। महिलाओं को लगातार समझाया जा रहा है कि (1)दहेज प्रथा पुरूष अत्याचार है (2) बहुविवाह भी अत्याचार है (3)महिलाओं को समानता का अधिकार नहीं है। महिलाऍ शोषित पीड़ित हैं (4) अविवाहित लड़कियों को घर में ठीक से खाना नहीं मिलता (5) पुरूष महिलाओं को पीटते हैं तथा पर्दे में रखते हैं आदि आदि। ऐसी और भी बहुत सी बातें लगातार फैलाई जाती हैं। इनमें से कौन सा आरोप सच है और कौन सा झूठ इसकी समीक्षा इस लेख का विषय नहीं क्योंकि हम तो सिर्फ कन्या भ्रूण हत्या तक ही सीमित हैं। किन्तु राजनेताओं के अनुसार इतना पूरी तरह प्रमाणित है कि महिलाऍ पूरी तरह पीड़ित है, शोषित है, सहायता की पात्र हैं। यदि हम वर्तमान सामाजिक स्थिति की समीक्षा करें तो पाते हैं कि प्रत्येक पुरूष और स्त्री को दूसरे के साथ रहने की अनिवार्य आवश्यकता हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री और पुरूष में से जिसकी संख्या कम होगी उसका महत्व बढ़ेगा। बहुत पुराने जमाने में महिलाओं की संख्या अधिक थी और पुरूषों की कम। क्योंकि युद्ध में बड़ी संख्या में पुरूष तो मारे जाते थे किन्तु सामाजिक नियमों के अनुसार स्त्री की हत्या तो दूर की बात थी, हाथ भी उठाने पर रोक थी। ऐसे काल खंड में पुरूषों का महत्व बढ़ा। उन्होंने कुछ मनमाने नियम बनाये होंगे। दहेज प्रथा, बहु विवाह , सती प्रथा, पर्दा प्रथा, पुरूष प्रधान परिवार आदि नियम उस समय बने होंगे जिन्हें आज अत्याचार बताया जाता हैं। संभव है कि इनमें से कुछ प्रथाऍ महिलाओं की बढ़ी आबादी को संतुलित करने के उद्देश्य से सोच समझकर बनाई गई हों अथवा कुछ पुरूष प्रधानता के आधार पर किन्तु करीब डेढ़ सौ वर्ष पूर्व महिलाओं की संख्या निश्चित रूप से ज्यादा थी जो सौ वर्ष पूर्व के आसपास बराबर हुई होगी। और आज सौ वर्ष बाद घटकर लगभग साढ़े अड़तालीस प्रतिशत है। सौ वर्षो में महिलाओं की संख्या बराबर से डेढ़ प्रतिशत कम हुई है बावजूद इसके कि दहेज हत्या, भोजन कम देना, कन्या भ्रूण हत्या, सती प्रथा आदि के अत्याचार बढ़े बताये जाते है। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या समस्या इतनी विकराल हो गई है कि उसे इतना महत्व दिया जाय?

आज महिलाओं की स्थिति में सुधार का सिर्फ एक ही आधार है कि आबादी के अनुपात में वे कुछ कम हुई हैं। आवश्यकता के अनुसार दहेज प्रथा लगभग स्वैच्छिक हो गई। बहु विवाह प्रथा भी स्वयं कम हो गई हैं। यहॉ तक कि कई जगह तो दहेज लड़की के पिता तक को मिलना शुरू हो गया है। महिलाओं का सम्मान भी समाज में बढ़ा है। भारत का राजनेता इन सबका श्रेय अपने साथ जोड़ कर रखना चाहता है जबकि सच्चाई यह है कि इन परिणामों से किसी कानून ,किसी संविधान, किसी नेता का कोई मतलब नहीं। सामाजिक समस्या का समाधान प्रकृति स्वयं कर रही है भले ही नेता चाहे कितनी भी ताल क्यों न लगा लें।

मैं नहीं समझता कि महिलाओं की संख्या घटकर साढ़े अड़तालीस प्रतिशत होने में यदि सौ वर्ष लगे तो आगे के दस बीस वर्षो में ही घटकर कोई चालीस प्रतिशत हो जायेगी कि जिससे भारी संकट हो जायेगा। यदि यह

घटकर सैंतालिस अड़तालिस तक भी हो जावे तो कौन सा बड़ा संकट आने वाला है। स्वाभाविक रूप से महिलाओं का महत्व तेजी से बढ़ेगा। जब अभी ही इतना प्रभाव है कि कुछ लड़के वाले पैसा देकर विवाह कर रहे हैं तो आगे तो और भी भगदड़ मचेगी। क्या बिगड़ जायेगा ? पूरा भारत आबादी नियंत्रण के लिये प्रयासरत हैं। सारे देश को चिन्ता है कि आबादी की बाढ़ कैसे रूके। बच्चे पुरूष के पेट से तो निकलते नहीं। निकलते हैं महिलाओं के पेट से। यदि उनकी आबादी कुछ कम हो जावे तो आबादी वृद्धि की समस्या पर भी कुछ सकारात्मक प्रभाव ही होगा। कुछ तो कन्या भ्रुण हत्या का प्रभाव पड़ेगा और कुछ आगे उनसे पैदा होने वाले बच्चों पर। महिला उत्पीड़न समाप्ति के साथ साथ आबादी नियंत्रण का भी लाभ संभव है।

मैं आज तक नहीं समझा कि कन्या भ्रूण हत्या से हमारे नेता इतना अधिक चिन्तित क्यों हैं। यदि उन्हें महिलाओं की घटती संख्या से भविष्य में जन्म दर पर विपरीत प्रभाव पड़ता दिखता हो तो वे कम से कम दस वर्ष और चलने दें। यदि उन्हें विवाह योग्य लड़कियों का अभाव दिखता हो तब भी इस अनुपात को पैतालिस पचपन तक की प्रतीक्षा करें। यदि मजबूरी में कुछ लोग बाबा रामदेव और स्वामी अग्निवेष बन जावें तो कोई विशेष बात नहीं। यदि कन्या भ्रूण हत्या अमानवीय है तो बालक भ्रूण हत्या मानवीय कैसे हो गईं। मानवता के समक्ष तो बालक बालिका का भेद नहीं। उसके समक्ष तो भ्रूण हत्या का मतलब सिर्फ भ्रूण हत्या से है चाहे बालक हो या बालिका। यदि गिरते लिंग अनुपात का खतरा हो तो वह तो अभी समस्या के रूप में न दिखकर समाधान के ही रूप में दिख रहा हैं। फिर इतनी हाय तौबा क्यों?

भारत की राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल कन्या भ्रूण हत्या से इतनी चिंतित हैं कि उन्होंने अपने भाषण तक में इसका जिक्र किया। सोनिया जी, प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह जी भी प्रायः इस पर कुछ न कुछ कहते ही रहते हैं। संसद धड़ाधड़ कन्या भ्रूण हत्या रोकने के कानून पर कानून बना रही है। कन्या भ्रूण जांच तक को कानून से संचालित करना शुरू किया गया हैं। छापे मारे जा रहे हैं। न्यायालय पूरे सक्रिय हो गये हैं। न्यायाधीश भी पीछे नहीं दिखना चाहते। बाबा रामदेव और अग्निवेष जी सरीखे सन्त भी पीछे क्यों रहे। जब सभी नेता कन्या भ्रूण हत्या को राजनीति का आधार मान रहे हैं तो इन्हें भी तो आगे चुनावों में उतरना उतारना हैं। ऐसा बात का बतंगड़ बनाया जा रहा है जैसे कि बड़ा भारी तीर मार रहे हों। दस बीस वर्ष बाद यदि कुछ अंतर आया तब भी कहेंगे कि हमारे प्रयत्न काम आये और नहीं आया तब भी कोई बदनामी तो होनी नहीं है। एक तरफ महिला उत्पीड़न का भी नारा चलता रहेगा और दूसरी तरफ महिला आबादी अनुपात बढ़ाने का भी प्रयत्न चलता रहेगा। इस दो तरफा चित्त पट के खेल को ही तो राजनीति कहा जाता है।

मैं फिर से जानना चाहता हूँ कि कन्या भ्रूण हत्या समस्या है या समाधान। यदि वह समस्या है तो वह समाज के लिये कितनी प्राथमिक है। यदि यह समस्या एक दो वर्ष में नहीं रोकी गई तो कितना विनाशकारी प्रभाव डालेगी। एक दो वर्षो में पड़ने वाले विनाशकारी प्रभाव से निपटना संभव है कि नहीं। इन प्रश्नों के उत्तर खोजिये। यदि यह समस्या की अपेक्षा कई गुना ज्यादा समाधान है तो फिर इस पर इतनी हाय तौबा क्यों? यदि नेताओं के लिये यह मार्ग लाभदायक भी हो तो हमारे धर्मगुरू या सामाजिक कार्यकर्ता क्यों इसमें लगे हैं? जिन लोगों ने विदेशी संस्थाओं से धन लेकर सामाजिक दुकान खोल रखी है उनकी तो चर्चा ही व्यर्थ है किन्तु जो लोग शुद्ध सामाजिक सोच रखते है वे क्यों इस विनाशकारी हवा में बहे जा रहे हैं। बंद करिये इस राजनैतिक विदेशी समाज तोड़क महिला पुरूष विभेदकारी प्रयत्न की हां में हां मिलाना। और यदि आपको वास्तव में यह कार्य प्राथमिक दिखता है तो मुझे भी समझाइये कि मैं कहॉ गलत हूँ।

अन्त में आपसे निवेदन है कि भ्रूण हत्या को बालक बालिका के भिन्न चश्में से देखना बंद करिये और जो भी नीति बनाइये वह सम्पूर्ण समाज को जोड़ने वाली हो तोड़ने वाली न हों।

समाजवाद के अपने अपने अर्थ

विश्व साम्यवाद ने बंदूक के माध्यम से पूँजीवाद को परास्त करने की योजना बनाई थी और समाजवाद ने प्रचार को आधार बनाकर। दोनो का लक्ष्य था सत्ता प्राप्ति, टकराव का केंद्र था पूंजीवाद किन्तु टकराव के मार्ग भिन्न थे। साम्यवाद का मार्ग हिंसक था और समाजवाद का अहिंसक। किन्तु न दोनों के लक्ष्य में कोई भेद था न टकराव के केन्द्र में।

समाजवाद का स्वाभाविक अर्थ होता है समाज सर्वोच्च। निर्णय का अन्तिम अधिकार समाज के पास हो। जिस तरह राज्य की विभिन्न इकाइयॉ प्रदेश, जिला, ब्लाक, गांव, तक बंटी हुई हैं उसी तरह समाज की भी विभिन्न इकाइयॉ परिवार, गांव, जिला, प्रदेश ,राज्य के रूप में विभाजित हों। राज्य अपने अधिकार उपर से नीचे को देता है तो समाज अपने अधिकार नीचे से उपर को दे। समाजवाद में राज्य को समाज का प्रबंधक होना चाहिये अभिरक्षक नहीं। यह मौलिक फर्क है लोकतंत्र और समाजवाद में। लोकतंत्र की प्रचलित परिभाषा में तंत्र लोक का अभिरक्षक होता है और समाजवाद की प्रचलित परिभाषा भी वही है। किन्तु लोकतंत्र और समाजवाद की आदर्श स्थिति बिल्कुल भिन्न होती हैं। लोकतंत्र और समाजवाद की प्रचलित प्रणालियों में अन्तर यह है कि वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली समाज को आठ

आधारों पर बांटकर वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष फैलाती है तो समाजवाद की वर्तमान प्रणाली समाज में सिर्फ गरीब अमीर के बीच ही तीव्र वर्ग विद्वेष फैलाती हैं कभी कभी समाजवादी जाति, भाषा या धर्म के मामलों में भी टांग फंसा देते हैं किन्तु विश्व समाजवाद में इनकी कोई भूमिका नहीं।

गांधी समाजवाद के प्रबल पक्षधर थे भले ही उन्होंने समाजवाद नाम नहीं दिया। गांधी जी ने समाज सर्वोच्च का नारा दिया। उन्होंने अहिंसक तरीके से अकेन्द्रित सत्ता को लक्ष्य बताया। आर्थिक विषमता को उन्होंने दूसरे कम पर रखा। धार्मिक जातीय या अन्य टकराव उसके बाद थें गांधी जी के बाद जयप्रकाश जी तथा लोहिया जी ने अकेन्द्रित सत्ता और आर्थिक विषमता निवारण को समान प्राथमिकता देनी शुरू कर दी। दोनों समाजवादी थे। दोनों गांधी के अकेन्द्रित सत्ता के विचार से भी प्रभावित थे और पश्चिम की आर्थिक विषमता निवारण के नारे से भी। लोहिया जी जीवन भर अपनी लाइन पर चलते रहे और जे0पी0 गांधी की लाइन पर ज्यादा झुके। जे0पी0 और लोहिया साम्यवाद के हिंसा समर्थन के बिल्कुल विरूद्ध रहे। दोनों ही समाजवाद की स्पष्ट लाइन न लेकर दोनों लाइन लेकर चलते रहे जिसका परिणाम हुआ कि समाजवाद न पश्चिम की परिभाषा पर आगे गति पकड़ सका न गांधी की परिभाषा पर। आर्थिक विषमता और राजनैतिक विषमता में से यदि एक चुनना हो तो गांधी राजनैतिक विषमता को सर्वाधिक खतरनाक मानते जबकि लोहिया और जयप्रकाश जी निर्णय ही नहीं कर पाते कि कौन ज्यादा घातक है। यदि बिल्कुल मजबूरी ही होती तो शायद ये गांधी की तरफ झुकते किन्तु यह बिल्कुल साफ नहीं है। लोहिया जी तो साफ नहीं ही हो पाते भले ही अन्त में जे0पी0 गांधी की ओर झुक जाते।

लोहिया और जयप्रकाश जी के जाने के बाद तो समाजवाद और सत्ता का नापाक गठबंधन ही हो गया। समाजवाद शब्द का एक ही अर्थ हो गया "पूँजीवाद के विरूद्ध अहिंसक तरीके से सत्ता संघर्ष"। सत्ता प्राप्त करना इनका लक्ष्य है। पूँजीवाद का विरोध इनका मार्ग है। हिंसा से दूरी बनाना इनका आचरण है। ये हिंसा के मामले में साम्यवादियों से दूरी बनाकर रखते हैं किन्तु सत्ता के अकेन्द्रीयकरण से अब इनका कोई तालमेल नहीं रहा। समाजवाद शब्द ने अपना वास्तविक अर्थ खो दिया और समाजवाद शब्द सत्ता संघर्ष की भेंट चढ़ गया।

गांधी के मरते ही सर्वोदय को सत्ता लोलुपों ने गलत राह पकड़ा दी थी जिस पर वे बेचारे आज तक पूरी इमानदारी से चल रहे हैं। सर्वोदय में अधिकांश इमानदार और अच्छे लोग हैं जो सत्ता लोलुपों द्वारा बताई गई राह को ही सही राह मानकर चल रहे हैं किन्तु समाजवादी इतने भोले नहीं। वे सत्ता की तरफ टकटकी लगाये रहते हैं। कुछ प्रमुख समाजवादी मेरे सम्पर्क में हैं। डा0 सुनीलम्,मस्तराम कपूर, सुरेन्द्र मोहन आदि के लेख भी मैं पढ़ता रहता हूँ। वर्तमान सभी समाजवादी समाजवाद के पश्चिमी जगत के प्रचारित अर्थ को ही लगातार लकीर बनाकर पीट रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि इन बेचारों को समाजवाद का स्वाभाविक गांधीवादी अर्थ पता ही नहीं या ये पता ही नहीं करना चाहते। समाज की नीचे से उपर तक की प्रत्येक इकाई को अधिकतम इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता समाजवाद का भावार्थ है। इसमें धार्मिक, आर्थिक, जातीय , भाषा संबंधी तथा अन्य सब प्रकार की स्वतंत्रता शामिल है। यह स्वतंत्रता उस सीमा तक होनी चाहिये जो किसी अन्य इकाई की सीमा का अतिक्रमण न करे। यह सीमा गल्ती करने की स्वतंत्रता तक होनी चाहिये। मैं जब भी सुनीलम् भाई, मस्तराम कपूर या सुरेन्द्र मोहन जी जैसे समाजवादियों के विचार पढ़ता हूँ तो उसमें शायद किसी कोने में एक दो लाईन मजबूरी में सत्ता के अकेन्द्रीयकरण की बात मिल जावे अन्यथा पूरा का पूरा लेख आर्थिक विकेन्द्रीयकरण के लिये ही विभिन्न तर्क प्रस्तुत करता रहता है। ऐसे लेखों में समाजवाद शब्द और गांधी, लोहिया जयप्रकाश के उद्धरण देकर उन्हें पुष्ट भी किया जाता है किन्तु गांधी लोहिया जयप्रकाश ने ग्राम सभा सशक्तिकरण के लिये क्या कहा उसका उल्लेख नहीं। स्वाभाविक है कि आर्थिक विषमता पर चोट हमारे नेताओं का सत्ता संघर्ष का मार्ग खोलती है और ग्राम सभा सशक्तिकरण सत्ता संघर्ष का मार्ग बन्द करती है। यदि ग्राम सभाओं को ज्यादा अधिकार दिला भी दिये गये तो हमारे नेता गणों को उससे व्यक्तिगत या पारिवारिक क्या शक्ति मिलेगी। समाज मजबूत होगा और राज्य शक्ति के अधिकार और हस्तक्षेप कम हो जायेगे। हमारे समाजवादियों को नहीं चाहिये ऐसा समाजवाद। उन्हें चाहिये मुलायम सिंह जी का समाजवाद जो समाज को गुलाम बनाकर सारी सत्ता अपने और अपने समर्थकों के बीच बांट लें। स्वाभाविक है कि हमारे समाजवादी साथियों को यह समाजवाद ज्यादा अच्छा लगता है और इसीलिये समाजवाद का अर्थ अहिंसक तरीके से पूंजीवाद के विरूद्ध समाजवाद को सशक्त करना श्रेय होता है।

साम्यवाद तो पूँजीवाद से दौड़ में हार चुका हैं समाजवाद शब्द की भी पोल खुल चुकी है। समाजवाद पूंजीवाद से टकरा नहीं पा रहा। सत्ता संघर्ष में पूँजीवाद अकेला दिख रहा है। समाजवाद के नाम पर पूंजीवाद विरोध को आधार बनाकर सत्ता संघर्ष का सपना देखने वालों की संख्या घटती जा रही है। मनमोहन सिंह जी पूँजीवाद को ही लक्ष्य बनाकर सरपट दौड़े जा रहे हैं। पूँजीवाद की सरपट दौड़ को रोकने की जरूरत हैं। स्वाभाविक है कि इस सरपट दौड़ को रोकने का उचित आधार सत्ता के केन्द्रीयकरण बनाम सत्ता के अकेन्द्रीयकरण के बीच ही बन सकता हैं। यदि समाजवाद बनाम सत्तावाद का स्वरूप बनता तो अधिक अच्छा होता किन्तु समाजवाद शब्द रूपी विकृत मरणासन्न घोड़े को अब पुनः मजबूत करना कठिन काम होगा। इसलिये समाजवाद शब्द को तिलांजलि देकर अब लोक स्वराज्य शब्द को स्थापित करने का प्रयत्न हैं। जो लोग आर्थिक विषमता, पूंजीवाद विरोध, अमेरिका विरोध आदि को प्राथमिक मुद्दा मानते हैं वे उस दिशा में चलें किन्तु हमारा समाजवाद तो सिर्फ और सिर्फ समाज सशक्तिकरण , राज्य कमजोरीकरण, लोक स्वराज्य, ग्रम सभा सशक्तिकरण जैसे शब्दों तक ही केंद्रित रहेगा। यदि ग्राम सभा सशक्त होगी, समाज मजबूत होगा तो आर्थिक शक्तियॉ स्वयंमेव

उसके पास होगी। हमें पृथक से कुछ नहीं करना होगा। इसलिये यदि हमारे समाजवादी मित्रों की नजर कुर्सी पर नहीं है तो वे अब लोहिया जयप्रकाश के समाजवाद का या तो वास्तविक अर्थ समझ लें या समाजवाद की नई परिभाषा लोक स्वराज्य को आत्मसात् करने की कृपा करें। साम्यवाद समाप्त हो गया। समाजवाद मर रहा है। पूँजीवाद ने लोकतंत्र शब्द से गठजोड कर लिया है। बहुत अच्छा समय है जब समाजवाद शब्द का मोह छोड़कर लोक स्वराज्य शब्द को स्वीकार कर लें।

"न्यायपालिका के दायित्व और सीमाएँ"

भारतीय व्यवस्था तीन प्रकार के अधिकारों का समिश्रण है जिनमें "(1)मौलिक (2)संवैधानिक(3)सामाजिक " शामिल हैं। तीनों का अलग अलग स्वरूप भी होता है और सीमाएँ भी। मौलिक अधिकार प्राकृतिक होते हैं जिनकी स्वतंत्रता की गारंटी संविधान और समाज देता हैं। संवैधानिक अधिकार संवैधानिक व्यवस्था देती है जिनकी सुरक्षा की गारंटी संविधान देता है। सामाजिक अधिकार समाज देता है जिनकी सुरक्षा की गारंटी व्यक्ति देता है। कोई किसी की सीमाओं में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

संवैधानिक व्यवस्था तीन इकाइयों के आपसी तालमेल से चलती है जिन्हें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका कहा जाता हैं। तीनों को इस प्रकार समायोजित किया गया है कि तीनों एक दूसरे के पूरक भी हों और नियंत्रक भी। यदि कोई एक इकाई अपनी सीमा तोड़ने लगे तो शेष दो को उस पर लगाम लगानी चाहिये। तीनों में कोई सर्वोच्च नहीं होती। इस व्यवस्था को **check and balance system**कहते हैं और यही लोकतंत्र की जान होती है।

भारत में प्रारंभिक चालीस वर्षो तक विधायिका द्वारा विधायिका सर्वोच्च की हवा बहाई गई। इस हवा ने संविधान संशोधन करके सबसे पहले न्यायपालिका को पंगु बना दिया जब विधायिका ने अपने कुछ अधिकारों को न्यायिक समीक्षा से बाहर रखने का प्रावधान लागू कर दिया। उसके बाद उसने राष्ट्रपति के अधिकारों में भी कटौती करते हुए संविधान संशोधित कर दिया कि राष्ट्रपति दूसरी बार पारित विधेयक पर हस्ताक्षर करने को बाध्य हैं। विधायिका की इस मनमानी व्याख्या को न्यायपालिका और कार्यपालिका जिस सीमा तक सहती गई उसी सीमा तक विधायिका आगे बढ़ती गई जिसका अन्तिम परिणाम सन् पचहत्तर की तानाशाही के रूप में सामने आया जब पहली बार समाज को चेतावनी देनी पड़ी।

कार्यपालिका तो विधायिका के समक्ष आज तक कभी खड़ी नहीं हो पाई किन्तु जस्टिस भगवती के कार्यकाल में न्यायपालिका ने विधायिका पर अंकुश के लिये जनहित याचिका नाम से एक असंवैधानिक मार्ग निकाल लिया। इस मार्ग के बाद विधायिका दबने लगी। यहॉ तक कि न्याय पालिका ने नेहरू जी के समय के नवीं अनुसूची कानून की भी समीक्षा के अधिकार अपने पास वापस ले लिये तथा संविधान संशोधन के विधायिका के असीमित अधिकारों में भी "मूल स्वरूप" का अड़ंगा डाल दिया। विधायिका की उच्श्रृंखलता पर अंकुश लगना आवश्यक भी था और लगा भी। किन्तु विधायिका ज्यों ज्यों दबती गई त्यों त्यों न्यायपालिका आगे बढ़ती गई। जिस समय विधायिका का नेतृत्व तानाशाही की इच्छा पूर्ति के लगा था उस समय न्यायपालिका द्वारा चेक करना एक हिम्मत का काम था और उसकी सराहना भी हुई किन्तु जब विधायिका के नेतृत्व अटल जी मनमोहन सिंह जैसे लोकतांत्रिक इच्छा वाले व्यक्तियों के पास सुरक्षित हो तब न्यायपालिका द्वारा न्यायिक सक्रियता बैलेन्स बिगाड़ने की भूमिका ही मानी जानी चाहिये। किन्तु विधायिका सर्वोच्च की तरह ही न्यायपालिका को भी सर्वोच्च बनने का चस्का लगा और परिणाम टकराव की दिशा में जाने लगा। जिस समय विधायिका तानाशाही की दिशा में जा रही थी तब स्वयं सेवी संगठनों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने न्यायपालिका को सम्बल प्रदान किया था यह बात सच है। मैं व्यक्तिगत रूप से ऐसी घटनाएँ जानता हूँ जब जस्टिस भगवती के समय या उसके शीघ्र बाद की क्या स्थिति थी। किन्तु धीरे धीरे इन्हीं स्वयंसेवी संगठनों तथा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने न्यायिक सक्रियता का दुरूपयोग करते हुए न्यायपालिका सर्वोच्च का राग अलापना शुरू कर दिया। इसका परिणाम हुआ कि हमारे शालीन प्रधानमंत्री को न्यायपालिका के लिये सीमा में रहने की दुखद टिप्पणी करनी पड़ी। मेरे विचार में न्यायपालिका भूल गई कि उसके दायित्व क्या है और सीमाएं क्या हैं। मैं महसूस करता हूँ कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने किस मजबूरी और भारी मन से ये शब्द कहे होंगे।

सबसे पहले तो न्यायपालिका के दायित्व और सीमाओं की चर्चा करें। न्यायपालिका का दायित्व है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करें। यदि संविधान भी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के विरूद्ध हो तो न्याय पालिका का दायित्व है कि वह ऐसे संविधान संशोधनों की समीक्षा करें जो व्यक्ति के मूल अधिकारों में हस्तक्षेप न कर सके। आवश्यक है कि न्यायपालिका और संविधान व्यक्ति और नागरिक के बीच के अन्तर को समझे जो कि समझने में अभी कहीं न कहीं भुल हो रही है। मूल अधिकार व्यक्ति के होते हैं और संवैधानिक अधिकार नागरिक के। विधायिका को भ्रम है कि व्यक्ति और नागरिक इस प्रकार एक होते हैं कि हर व्यक्ति ही नागरिक होने से उसे प्राप्त मूल अधिकार भी संवैधानिक ही होते हैं। दूसरी ओर न्यायपालिका को भ्रम है कि प्रत्येक नागरिक व्यक्ति होता है और उसे प्रदत्त संवैधानिक अधिकर भी मूल अधिकार ही माने जाने चाहिये। दोनों ही तरफ से सीमाओं का ख्याल नहीं रखा जा रहा। मूल अधिकार संवैधानिक अधिकार और सामाजिक अधिकार

बिल्कुल पृथक पृथक हैं। व्यक्ति के मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी न्यायपालिका का दायित्व है और इस दायित्व निर्वहन में न्यायपालिका संविधान से भी उपर जा सकती है किन्तु नागरिक के संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा न्यायपालिका का दायित्व न होकर कर्तव्य मात्र है अर्थात् ऐसे मामलों में न्यायपालिका संविधान के अन्तर्गत ही आदेश या सलाह दे सकती है, उससे आगे नहीं। सामाजिक अधिकारों के मामले तो "न्यायपालिका और विधायिका" दोनों के हस्तक्षेप से बाहर होने चाहिये किन्तु हैं नहीं। ना समझी में ये लोग सामाजिक अधिकारों में भी मूल या संवैधानिक शब्द घुसाने की भूल कर देते हैं और यह भूल दुहराते जाना इनकी आदत है।

अब हम वर्तमान प्रसंग की चर्चा करें। आम तौर पर मूल अधिकार व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबद्ध होता है और संवैधानिक अधिकार सुविधा से। जीने की स्वतंत्रता हमारा मूल अधिकार होता है और जीने की सुविधा संवैधानिक। प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रयत्नों से भर पेट भोजन की स्वतंत्रता उसका मूल अधिकार है न कि भरपेट भोजन की सुविधा। रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसर की समानता आदि संवैधानिक अधिकार होते हैं और स्व निर्णय, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, सम्पत्ति, स्वतंत्र जीवन आदि मौलिक। कोई व्यक्ति यदि हमारी जेल में भूख से मर जाता है तो वह उसके मूल अधिकारों का हनन है और कोई स्वतंत्र व्यक्ति भूख से मर गया तो उसके मूल अधिकारों का हनन न होकर संवैधानिक अधिकारों का हनन है। ऐसे संवैधानिक अधिकारों की पूर्ति में राज्य और न्यायालय का संयुक्त दायित्व है न कि अकेले राज्य का। नासमझी में पश्चिमी विचार धाराओं के प्रभाव में आकर हमारे नेताओं ने भूख को मौलिक अधिकार कहना शुरू कर दिया और भरपेट भोजन, सबको शिक्षा, सबको रोजगार आदि को अपने उपर लाद लिया। अब न्यायालय भी समझने लगा कि किसी व्यक्ति को भरपेट भोजन न मिलना उसके मूल अधिकारों का उल्लंधन है और इस संबंध में टिप्पणी करने या आदेश देने का उसे पूरा पूरा अधिकार हैं जबकि ऐसा सोचना न्यायालय का भ्रम है।

यदि कोई अनाज सड़ जाता है तो इस संबंध में न्यायालय सरकार को सहायता कर सकता है या सलाह दे सकता है न कि आदेश। संवैधानिक अधिकारों की पूर्ति के मामले में न्यायालय व्यवस्था का पूरक है, जज नहीं क्योंकि नागरिक के नागरिक अधिकारों का उल्लंधन हो रहा है, व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकारों का नहीं। सरकार ने गरीबों को बीपीएल की सुविधा दे रखी है। सरकार इस सुविधा को बंद कर दे तो न्यायालय कौन होता है पूछने वाला जब तक कि वह कार्य किसी संवैधानिक व्यवस्था के विपरीत न हों। यदि संविधान के विरूद्ध भी हो और संसद संविधान में संशोधन करके इस सुविधा को वापस ले लें तो न्यायालय की भूमिका कहॉ से आ गई? अनाज सड़ने के मामले में न्यायालय ने जो सलाह दी वह तो ठीक थी कि अनाज सड़ने की अपेक्षा उसे फ्री भी बांट दिया जाय तो अच्छा है। इस सलाह में सड़ने की अपेक्षा शब्द महत्वपूर्ण हैं। यदि सरकार अनाज सड़ने की अपेक्षा विदेश में बेच दे तो न्यायालय का उद्देश्य तो पूरा हो गया। शरद पवार ने ठीक कहा कि हम मुफ्त नहीं बाट सकते लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा कि भले ही सड़ जाये। मनमोहन सिंह ने भी नहीं कहा। सुषमा जी ने भी कभी यह नहीं कहा कि अनाज बेचना या मुफ्त देना सरकार का अधिकार नहीं है। सुषमा जी ने कहा है कि सरकार ने खाद्य सुरक्षा बिल लाकर प्रत्येक नागरिक को भरपेट भोजन की गारंटी की घोषणा की है इसलिये सरकार को अब वह देना चाहिये। इस घोषणा का उल्लंघन राजनैतिक मामला बनता है न्यायिक नहीं क्योंकि भोजन की सुविधा संवैधानिक अधिकार है। न्यायालय ने सरकार को जो कहा उसमें उसे यह भी कहना था कि आप या तो अनाज का ठीक से भंडारण करो या बांट दो अथवा खरीदों ही मत। यदि भंडारण क्षमता नहीं है तो क्यों इतना ज्यादा खरीदते हो कि सड़ जावे। यह सुझाव तो न्यायालय का उचित है किन्तु न्यायालय यह आदेश नहीं दे सकता कि सरकार गरीबों को सस्ता अनाज दे या भूखें पेट कोई न रहे आदि आदि। न्यायालय ने जो सलाह दी उसे ही लेकर सामाजिक कार्यकर्ता आगे आ गये और न्यायालय ने सलाह को आदेश कह दिया जिस पर मनमोहन सिंह जी को टिप्पणी करनी पड़ी। यदि विधायिका के निर्णय को कार्यपालिका ठीक से कार्यान्वित नहीं करती तो न्यायालय कार्यपालिका को आदेश दे सकता है। किन्तु नीति निर्धारण विधायिका का काम है और उसकी समीक्षा सिर्फ मतदाता ही कर सकता है न्यायालय नहीं। ये सीमाऍ जितनी स्पष्ट हों उतना ही लोकतंत्र के हित में है। दुर्भाग्य से वर्तमान में ये सीमाऍ बिल्कुल ही अस्पष्ट हैं।

मैं न्यायपालिका का आभारी हूँ कि उसने विधायिका के पर कतर कर भारत को संभावित तानाशाही से बचा लिया। मैं मनमोहन सिंह जी का आभारी हूँ कि उन्होंने न्यायिक सक्रियता के दुष्परिणामों से देश को अवगत करा दिया। न्यायपालिका को रूककर अपनी सीमाओं की समीक्षा करनी चाहिये और विधायिका को भी अब रूक कर न्यायिक सक्रियता पर समय समय पर टिप्पणी करते रहना चाहिये। यदि मौलिक, संवैधानिक और सामाजिक अधिकारों की सीमाओं को आधार बनाकर न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के दायित्व, कर्तव्य तथा अधिकारों की सीमाओं पर स्वतंत्र बहस नहीं हुई तो यह भ्रम हमेशा बना ही रहेगा और जो शालीन होगा वह परेशान होता ही रहेगा।

कार्यालयीन प्रश्न उत्तर

1.प्रश्न– अनाज सड़ गया इस संबंध में आप अपने विचार दें। क्या यह अपराध नहीं है?

उत्तर– अनाज का सड़ना सरकार की गंभीर गल्ती है। तीन संस्थाएँ व्यवस्था कर रही हैं (1) विधायिका (2)कार्यपालिका(3) न्यायपालिका। तीनों में से कौन अधिक गलत है यह विचार करना होगा। यदि विधायिका ने क्षमता से अधिक दायित्व ले लिया और कार्यपालिका उसे सम्हाल नहीं सकी तो विधायिका गलत है। यदि विधायिका के निर्णय व्यावहारिक थे किन्तु कार्यपालिका के लोगों ने लापरवाही की तो कार्यपालिका के लोग दोषी हैं। यदि न्यायपालिका ने क्षमता से ज्यादा दायित्व विधायिका और कार्यपालिका पर लाद दिया तो वह दोषी है। दोष तो व्यवस्था का है। मेरे विचार में समग्र रूप से विचार करने में कार्यपालिका दोषी नहीं है। विधायिका ने क्षमता से अधिक वजन उठाने की जल्दबाजी की जिसे वह सम्हाल नहीं सकी। किसानों को भी अच्छे दाम मिले और उपभोक्ता को भी सस्ता मिले ये दोनों लक्ष्य प्राप्त करना आसान काम नहीं। सरकार ने एक साथ दोनों काम ले लिये। अनाज खरीद के मामले में न्यायालय के आदेश का मुझे पता नहीं। यदि न्यायालय ने भी बीच में किसानों का सारा अनाज खरीदने को कहा हो तो वह भी गलत है।

यह सच है कि सरकार ने अनावश्यक काम अपने जिम्मे लेकर भूल की जिसके कारण इतना अनाज सड़ गया। अनाज का सड़ना कोई साधारण भूल न होकर गंभीर दण्डनीय भूल है। किसान अनाज पैदा करे और आपकी व्यवस्था की गल्ती उसे सड़ा दे यह किसी भी परिस्थिति में क्षम्य नहीं। इसके लिये सर्वाधिक दोषी तो शरद पवार ही हैं जिन्होंने यह व्यवस्था सम्हाल रखी है किन्तु इस भूल के लिये पूरी सरकार ही दोषी मानी जानी चाहिये क्योंकि उसकी मूल भूत नीतियॉ दोष पूर्ण होने से यह अव्यवस्था हुई। आप को सस्ता अनाज देने और मंहगा खरीदने की योजना पर इतनी तेजी से कदम क्यों बढ़ाना चाहिये जो आपसे सम्हल न सकें। आप जानते हैं कि आप की कार्यपालिका भ्रष्ट भी है और अव्यवस्थित भी। आपने उसके उपर इतना दायित्व डाल दिया जितनी उसकी क्षमता नहीं थी। दुर्घटना होनी स्वाभाविक थी। दुर्घटना का कारण अव्यवस्था नहीं थी बल्कि अति महत्वाकांक्षा थी जिससे अव्यवस्था हुई।

सरकार को अनाज खरीद बिक्री का काम क्यों करना चाहिये। सरकार अपना न्याय और सुरक्षा का काम तो कर नहीं पा रही। बेकार का काम अनाज खरीद बिक्री में हॉथ डाल रही है। यदि सरकार किसानों को कोई राहत देना चाहती है तो वह एक लाभदायक न्यूनतम मूल्य घोषित करके उससे कम भाव पर बिकने वाला सारा अनाज खरीद कर निर्यात कर दे। यह अनाज भारत में न रहे अन्यथा वह अनाज घूम फिरकर किसानों की कमर तोड़ता रहेगा। यदि सरकार गरीब उपभोक्ताओं को राहत देना चाहती है तो वह उनकी सूची बनाकर उन्हें नगद मासिक राहत पैसा दे दें। यदि सरकार विशेष स्थिति के लिये बफर स्टाक सुरक्षित रखना चाहती है तो वह बड़े व्यापारियों से ठेका कर ले कि यदि आवश्यक हुआ तो सरकार दो वर्ष के भीतर कभी भी घोषित मात्रा में ठेका मूल्य पर अनाज खरीद सकती है। यदि नहीं खरीदेगी तो वह ठेके अनुसार व्यापारी को क्षतिपूर्ति करेगी। न सरकार को अनाज खरीदना न बेचना। विशेष स्थिति के लिये व्यापारी से ठेका। व्यापारी या तो स्टाक करेगा या बाहर से लाकर देगा। यह सरकारी चिन्ता का विषय नहीं। अनाज के खरीद बिक्री पर सरकार जो टैक्स वसूलती है वह तो भारी पाप का काम है। यदि आज भारत में चाणक्य होते तो पहला आंदोलन यही करते कि किसान और उपभोक्ता के बीच उत्पादन उपभोग की वस्तुओं पर कोई टैक्स क्यों?

इतना होते हुए भी अनाज बर्बादी की घटना में हस्तक्षेप न्यायालय का काम नहीं। अनेक आवश्यक मुकदमें वर्षो से लम्बित हैं किन्तु न्यायालय और काम छोड़कर सरकार की भूल पर प्राथमिकता से ध्यान देता हैं। सरकार ने कोई अपराध नहीं किया है। सरकार की गल्ती है जिसकी सजा उसे मतदाता देगा, कोर्ट नहीं। कोर्ट को ऐसा अधिकार भी नहीं है कि वह ऐसे मामलों मे दखल दे। यदि कोई शेषन सरीखा व्यक्ति प्रधानमंत्री होता तो कोर्ट को सीमाएँ समझा देता। यह काम मतदाताओं का है और मेरा विचार है कि भारत का मतदाता सरकारी अनाज सड़न को गंभीर गल्ती मानकर सरकार की समीक्षा करे और संभव दंड दे किन्तु न्यायालय मतदाता और सरकार के बीच में अपने टॉग न फसाये

2.नरेन्द्र मोदी की ऐतिहासिक जीत और उनका बिहार दौरा

भारतीय राजनीति विभिन्न विचारधाराओं का प्रयोग क्षेत्र है। यहॉ दो प्रमुख विचारधाराओं के बीच पिछले चुनाव में स्पष्ट टकराव था जिसमें एक धारा का प्रतिनिधित्व कर रहे थे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी, सोनिया गांधी, गृहमंत्री चिदम्बरम्, अशोक गहलोत, रमणसिंह, नरेन्द्र मोदी, बुद्धदेव भट्टाचार्य, बिहार के मुख्यमंत्री नीतिश कुमार, झारखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री बाबूलाल मरांड़ी, केरल के मुख्यमंत्री अच्युतानन्दन, शांता कुमार उड़ीसा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक, आदि तो दूसरे गुट के उच्च नेता थे मायावती, मुलायमसिंह, लालू प्रसाद, रामबिलास पासवान, अजीतजोगी, जयललिता, करूणानिधि, शिबू सोरेन, उमा भारती, अमर सिंह, प्रकाश करात, ममता बनर्जी आदि। एक गुट की पहचान सर्वोच्च, तिकड़मी की रही तो एक की शालीनता के उच्च मानदण्डों की। शालीनता के पक्षकार भी सभी राजनैतिक दलों में शामिल रहे और तिकड़म प्रधान लोग भी। स्वतंत्रता के बाद पहली बार शालीन छवि वाला गुट मजबूत हुआ और तिकड़म प्रधान गुट कमजोर। मैंने इस संबंध में कई बार लिखा भी और आज

फिर लिख रहा हूँ कि मनमोहन सिंह सोनिया गांधी के सामने आडवाणी सुषमा स्वराज्य की छवि बहुत कमजोर सिद्ध हुई। तिकड़म के मामले में ये अपनी सर्वोच्च छवि नहीं बना पायें।

नरेन्द्र मोदी और नीतिश कुमार की छवि लालू मुलायम रामबिलास मायावती अजीत जोगी आदि की तुलना में ईमानदार और साफ सुथरी मानी जाती है किन्तु दोनों का आपस में बहुत अन्तर है। नीतिश कुमार गांधी के मार्ग पर विश्वास करते हैं तो मोदी संघ मार्ग पर। नीतिश कुमार लोकतंत्र के विकेन्द्रित स्वरूप की दिशा में बढ़ना और बढ़ाना चाहते हैं तो मोदी लोकतंत्र को केन्द्रित मार्ग की ओर ले जाना चाहते हैं। मोदी के मार्ग से समस्याओं का जल्दी समाधान होगा। अपराध घटेंगे और तीव्र विकास होगा। समाज में राज्य का भय बढ़ेगा। मोदी की छवि उभरेगी। लोकतंत्र तानाशाही की ओर बढ़ेगा। नृतीश के मार्ग से समस्याओं का समाधान देर से होगा, विकास धीरे होगा, अपराध घटेंगे किन्तु घटते हुए दिखेंगे नहीं, समाज में राज्य का भय घटेगा। नीतिश की छवि उभरने में देर लगेगी। दोनों के मार्ग बिल्कुल विपरीत हैं किन्तु परिणाम सुखद है। मोदी सुशासन के माध्यम से अव्यवस्था दूर करना चाहते हैं तो नीतिश स्वशासन के माध्यम से। मैं नीतिश मार्ग का प्रशंसक हूँ, मोदी मार्ग का आलोचक और लालू मुलायम जोगी मार्ग का विरोधी। मोदी जी गुजरात में लगातार सफल हो रहे हैं इससे मुझे खुशी होती हैं। अभी सितम्बर माह में ही मोदी जी ने गुजरात के एक मुस्लिम बहुल इलाके से विधान सभा की कठलाल सीट भारी मतों से जीती वह एक शुभ लक्षण है। वहॉ पचासों वर्ष से कांग्रेस काबिज थी। इस सीट पर भारी मतों से जीत सिद्ध करती है कि गुजरात का मुसलमान भी सुशासन का प्रशंसक है। किन्तु मोदी जी को विहार जाने से बचना चाहिये। बिहार में नीतिश कुमार लोकतंत्र का गांधीवादी प्रयोग कर रहे हैं। वहॉ नरेन्द्रमोदी का जाना लालू पासवान के लिये सहायक होगा। मोदी जी सोहराबुद्दीन इशरतजहॉ सरीखे अपराधियों को गैर कानूनी तरीके से भी हटाकर सुशासन चाहते हैं दूसरी ओर नीतिश कुमार कानूनी तरीके से ही बड़े बड़े अपराधियों पर नकेल कसने में सफल हो रहे हैं। मोदी जी खतरे उठाकर बढ़ रहे हैं तो नीतिश जी खतरों से बचकर। मोदी हिम्मत से काम कर रहे हैं और नीतिश समझदारी से। दोनों के मार्ग भिन्न भिन्न हैं। दोनों को अपनी अपनी सीमाओं में ही रहना चाहिये मोदी का बिहार जाना एक गलत कदम होगा। वह बिहार भाजपा के लिये जितना लाभकारी होगा उससे कई गुना ज्यादा नीतिश जी के प्रयोग को नुकसान करेगा।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न– श्री अरूण केशरी, अध्यक्ष पूर्वांचल उद्योग व्यापार प्रतिनिधि मंडल वाराणसी, उत्तर प्रदेश– 221002

प्रतिक्रिया– ज्ञान तत्व 207, पृष्ठ सं0 23 पर उत्तर देते हुए आपने मेरे उपर जो आक्षेप किया है वह नितान्त घटिया स्तर का है। आपसे ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती। अमेरिकी साम्राज्यवाद का मैं विरोधी हूँ। आप अमेरिकी पूँजीवाद के प्रशिक्षित दलाल है।

सभी धर्मो के प्रति मेरे मन में समभाव एवं आदर है। धर्म निरपेक्षता के प्रति–प्रतिबद्धता मेरा जीवन दर्शन है। आपने मुझे इसाइयत विरोधी कहकर मेरे व्यक्तिगत जीवन पर आक्षेप किया है जिसकी मैं घोर निन्दा करता हूँ। अपनी गलती स्वीकारें।

राजीव भगवन जैसे फ्राड के साथ मेरा नाम जोड़कर आपने दूसरी गलती की है। मेरे सामाजिक राजनीतिक जीवन–यात्रा के विषय में आपको कोई जानकारी नहीं है, भविष्य में ऐसी टिप्पणी करने से बचे।

समीक्षा– आपने मेरी टिप्पणी पर जो लिखा वह अपेक्षित था। मेरे पिताजी अपने कार्यकाल में कमीशन एजेंट का ही कार्य करते थे और मैं भी विरासती व्यापार के क्रम में कमीशन एजेंट का काम अन्त तक करता रहा। अब भी मेरे बाद मेरे भाई वही काम करते हैं जिसे शुद्ध भाषा में दलाली कहा जाता है। इसलिये आपने जैसा सोचकर दलाल शब्द लिखा वैसा मुझे नहीं लगा क्योंकि यह शब्द मेरे लिये अपरिचित नहीं हैं। यदि अब अमेरिका की दलाली करने का अवसर मिले तब भी पूरी इमानदारी से अपना काम करूंगा। वैसे इन बातों का कोई महत्व नहीं क्योंकि न तो आप जानबूझकर किसी का पक्ष ले रहे है न ही मैं। ऑकलन में फर्क स्वाभाविक है। ऑकलन के अंतर को नीयत के साथ जोड़ना उचित नहीं।

मुझे आप सबके भोपाल कांड संबंधी कथन पर विश्वास नहीं हुआ भले ही वह सच हो। आप लोग एक अविश्वसनीय इन्डिपेन्डेन्स ट्रीटी की भी चर्चा किया करते है। आप लोग किसी विदेशी पुस्तक की भी कई बार चर्चा करते रहते हैं। उसी तरह भोपाल गैस कांड की भी चर्चा हुई। मैंने इन्डिपेन्डेन्स ट्रीटी की खूब खोजवीन की तो कोई ओर छोर पता नहीं लगा। घूम फिर कर बात मुक्तानंद जी पर आकर टिक गई। मैंने विदेशी पुस्तक की जानकारी ली तो बात मुक्तानंद जी पर आकर टिकी। मैं आपके भोपाल गैस कांड का भी ओर छोर जानना चाहता था। किन्तु आपने कुछ जानकारी देना ठीक नहीं समझा। जब आपके कथन पर मुझे विश्वास नहीं और आप न तो कोई प्रमाण बताना चाहते हैं न मुझे विश्वास है तो बताइये कि मैं कैसे मान लूँ? आपके विषय में मुझे इतनी जानकारी तो है नहीं जो मैं आपके हर कथन को आंख मूंदकर सच मान लूँ। मुक्तानंद जी तो स्वयं उस ट्रीटी को पढ़ा हुआ बताते थे। आप तो वैसा भी नहीं बता रहे कि आपको इस योजना की गुप्त जानकारी हैं। संभव है कि

आपको असत्य बताया गया हो जिससे आपकी विश्वसनीयता पर आंच आवे। आप सब यदि निकट से परिचित नहीं होते तो मैं इतना भी नहीं लिखता। मैंने जो कुछ लिखा वह सोच समझकर लिखा, ठीक नीयत से लिखा, सच जानने के लिये लिखा। यदि आपने सच की खोज में सहायता करने की जगह दबाव बनाना शुरू किया तो मुझे यह विश्वास करना होगा कि कोई असत्य जानबूझकर फैलाया जा रहा है। आशा है कि आप अपने कथन के लिये जानकारी का कोई आधार बताने की कृपा करेंगे। मैंने आपके विषय में अमेरिका विरोधी और इसाइयत विरोधी शब्द लिखे। अब तक मुझे आपके उत्तर से कहीं अपने कथन में असत्यता का आभास नहीं हुआ। आपके पूरे जीवन को तो मैं जान नहीं सका। आपके विचारों के आधार पर मोटा मोटा ही अन्दाज है जो गलत भी हो सकता हैं इसलिये अब तक तो मुझे ऐसी कोई भूल का आभास नहीं हुआ कि मैं गलती स्वीकार करूँ ।यदि आप भूल का विश्वास करा देंगे तो गल्ती स्वीकार करने में देर नहीं होगी। याद रखिये कि डांटने से विश्वास नहीं बदला करतें विश्वास बदलने के लिये मधुर संवाद चाहिये। डांटना छोड़कर संवाद शुरू करिये।

जहॉ तक मेरी बात है तो मैं घोषित रूप से साम्यवाद विरोधी हूँ। आर्थिक नीति भी मेरी स्पष्ट है कि मैं सरकारी करण की अपेक्षा सम्पूर्ण निजीकरण का पक्षधर हूँ और निजीकरण की अपेक्षा समाजीकरण का। इसी तरह मैं साम्यवाद की जगह पूंजीवाद का और पूंजीवाद की जगह लोकस्वराज्य का पक्षधर हूँ। मैं किसी भी रूप में पूंजीवाद का एक पक्षीय विरोधी नहीं। भारत में सरकारी करण के पक्षधर निजीकरण के विरूद्ध और तानाशाही के पक्षधर लोकतंत्र के विरूद्ध लिखते रहते हैं। मैं ऐसे लेखन के विरूद्ध हूँ। मेरी स्थिति स्पष्ट है। आप जब लिखेंगे तभी पता चलेगा। अपने विचार विस्तार से लिखिये।

इस प्रसंग में मैंने जानबूझकर आपका उल्लेख किया। आप वाराणसी में आयोजित होने वाली भारत चीन मैत्री सभा के लिये वक्ता के रूप में मुझे आमंत्रित किये। उस सभा में चीन सहित कुछ विदेशी राजदूत भी रहने वाले हैं। मैं मंच की गरिमा बनाते हुए ही बोलता। फिर भी यदि मेरा पूर्व का कोई लेख उन्हें मिलता तो आपको कठिनाई होती। इसलिये मैंने अपनी बात स्पष्ट करना उचित समझा कि आप इतने बड़े आयोजन के पूर्व वक्ता की पृष्ठ भूमि अवश्य जान लें। वैसे विरोधी मंचों पर भी मैं अप्रिय स्थिति नहीं बनने देता फिर भी जानकारी अवश्य रहनी चाहिये।

मैं प्रतीक्षा करूंगा कि आप, राजीव जी या कोई और भोपाल कांड में किसी षड़यंत्र की ठोस जानकारी भेज सकें।

3.प्रीति प्रसाद द्वारा अजित प्रसाद, शिवाजी रोड, मेरठ यू0पी0

आज ही मुझे आपके द्वारा भेजा गया **Post Card** प्राप्त हुआ है। मुझे दुख है कि आपके द्वारा भेजे गए पहले **Post Card** मुझे मिल नहीं पाए और मैं उनका उत्तर नहीं दे पाई। मुझे आपकीं ज्ञान तत्व पत्रिका बहुत पसंद है, इसलिए आप इसे मेरे पास भेजते रहें।

मेरा आपसे निवेदन है कि आप हिन्दी भाषा के उपर भी एक अंक निकालें कि, क्यों हिन्दी इतनी अच्छी भाषा होने के बाद भी आज की युवा पीढ़ी में प्रचलन में नहीं आ रही है। और उसे इतना सम्मान नहीं मिली रहा है जितना कि मिलना चाहिए।

उत्तर– मैं एक सप्ताह पूर्व रामानुजगंज गया था। हमारे मित्रों की सलाह थी कि अपने स्कूल को इंग्लिश मीडियम बना देना चाहिये। अंग्रेजी का क्रेज तेजी से बढ़ रहा हैं। हिन्दी पिछड़ रहीं है। मुझे भी महसूस होता है कि इस बात में कुछ सच्चाई है। सम्पूर्ण भारत में हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी बढ़ रही है।

वर्तमान समय में प्रतिस्पर्धा का समय है। हिन्दी को भी अंग्रेजी से प्रतिस्पर्धा करनी होगी। हिन्दी में वैसी क्षमता भी हैं। हिन्दी लेखन और पठन पाठन अंग्रेजी की अपेक्षा ज्यादा सुविधा जनक है। पिछले पचास वर्षो से हिन्दी लगातार बढ़ भी रही थी किन्तु पिछले दो चार वर्षो से एकाएक अंग्रेजी भाषा में उफान आना शुरू हुआ। इसके कारणों पर गंभीर चिन्तन होना चाहिये।

मेरे विचार से इसका एक खास कारण है क्षेत्रीय भाषाओं का उभार। पहले दक्षिण भारत के कुछ ही प्रदेश क्षेत्रीय भाषाओं से चिपटे हुए थे। सिनेमा ने ऐसे प्रदेशों में भी हिन्दी को अपने आप फैला दिया था। किन्तु पिछले चार पांच वर्षो में हिन्दी भाषी राज्यों में भी क्षेत्रीय भाषा विस्तार भावना ने जोर पकड़ा। मैं पिछले कई वर्षो से सेवाग्राम आश्रम जाता रहा हूँ। वहॉ लगातार मराठी भाषा का प्रचलन बढ़ाया जा रहा है। दस वर्ष पूर्व वहॉ जितनी आसानी से हिन्दी अखबार मिलते थे, आज उतनी आसानी नहीं। मैं बंगाल गया तो वहॉ भी क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार दिखा। उड़ीसा का भी वहीं हाल है।

अभी अभी मेरे देखते देखते छत्तीसगढ़ में भी छत्तीसगढ़ी को जबरदस्ती लादने की कोशिश शुरू हो रही हैं। छत्तीसगढ़ के आदिवासियों की आपसी बोल चाल की भाषा छत्तीसगढ़ी है किन्तु वे आम तौर पर हिन्दी समझ

लेते हैं भले ही बोल नहीं पाते। जो थोड़े से अन्य लोग हैं वे हिन्दी समझते और बोलते हैं। विकास की दिशा का आधार या तो हिन्दी है या अंग्रेजी। विचारणीय प्रश्न यह है कि हम हिन्दी जानने वालों को छत्तीसगढ़ी सिखावें या छत्तीसगढ़ी जानने वालों को हिन्दी। छत्तीसगढ़ी के विस्तार से आम लोगों को सुविधा होगी यह सही है। किन्तु छत्तीसगढ़ी का विस्तार उनके विकास में बाधक होगा क्योंकि पूरे भारत की सम्पर्क भाषा छत्तीसगढ़ी नहीं हो सकती। जिस तरह हिन्दी भाषी परिवारों को अंग्रेजी जानने के लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ता है उसी तरह छत्तीसगढ़ की बहुसंख्यक आबादी को हिन्दी जानने के लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा क्योंकि उसकी स्थानीय संपर्क भाषा हिन्दी की जगह छत्तीसगढ़ी हो जायेगी। क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार हिन्दी के प्रचार प्रसार में सहायक न होकर बाधक हो रहा है। अंग्रेजी के साथ छत्तीसगढ़ी या उड़िसा तो प्रतिस्पर्धा कर नहीं सकती। यदि कर सकती है तो सिर्फ हिन्दी। हिन्दी को सम्बल प्रदान करने वाले क्षेत्रीय भाषाओं के प्रचार प्रसार में जोर लगाने लगे। परिणाम होगा कि हिन्दी कमजोर होगी। एक परिवार सफलता पूर्वक आगे बढ़ रहा था। सब भाई मिलकर काम कर रहे थे। जब परिवार बढ़ा तो भाइयों में अलग अलग धन रखने की प्रवृत्ति जगी। कुछ ही वर्षो में परिवार घाटे में चला गया क्योंकि निष्ठाएँ दो जगह केन्द्रित हुई और विशेष निष्ठा अपने परिवार के प्रति हुई।

अंग्रेजी के विस्तार का एक प्रमुख कारण और है। भारत में अच्छा रोजगार प्राप्त करने में हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी अधिक उपयोगी है। इस समय आउट सोर्सिंग भी बढ़ रहा है। हमारा व्यवसाय भी दुनिया के देशों से लगातार बढ़ रहा है। ऐसे समय में हिन्दी को बढ़ाने में और ज्यादा ध्यान देना आवश्यक था। क्योंकि हिन्दी और अंग्रेजी के बीच स्वाभाविक रूझान अंग्रेजी की तरफ ज्यादा है। मैं अभी निश्चित रूप से क्षेत्रीय भाषाओं के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाल रहा। छत्तीसगढ़ी में काम होने से तात्कालिक सुविधा होगी और दीर्घकालिक हानि। हिन्दी अंग्रेजी से कम्पीटीशन में कमजोर पड़ेगी। मैं चाहता हूँ कि छत्तीसगढ़ी सहित क्षेत्रीय भाषा विस्तार पर खुला विचार मंथन हो। छत्तीसगढ़ी का प्रयोग हो किन्तु विस्तार न हो या कोई और मार्ग निकले। भाषा को भावना और संस्कृति के साथ जोड़ना ठीक नहीं। भाषा एक माध्यम मात्र है। भाषा सिर्फ सुविधा है। इससे ज्यादा समझना ठीक नहीं।

4.श्री सत्यम्, (इमेल से काश इन्डिया में प्रश्न)

प्रश्न– आपके विचारों से ऐसा लगता है कि आप देश के लिये कुछ अच्छा करना चाहते हैं। आपका स्पष्ट उद्देश्य क्या है, आप देश के हित में क्या करना चाहते हैं यह हमें अवगत कराने की कृपा करें।
उत्तर– देश और राष्ट्र लगभग समान अर्थ रखते हैं किन्तु देश, धर्म और समाज बिल्कुल भिन्न अर्थ रखते है। स्वतंत्रता के बाद देश ने उन्नति की है। अटल जी और मनमोहन सिंह जी के समय प्रगति की रफ्तार और तेज हुई है। भारत दुनिया के उन्नत देशों के क्रम में तीसरे स्थान पर आ गया है। आर्थिक विकास संतोष जनक है। भौगोलिक सीमाओं पर भी तात्कालिक खतरा नहीं दिखता। यदि कुछ होगा तो हमारा राजनैतिक ढांचा निपट लेगा ऐसा विश्वास करना चाहिये। देश के विषय में हमें कुछ अलग से करने की आवश्यकता नहीं दिखती। किन्तु स्वतंत्रता के बाद लगातार समाज व्यवस्था कमजोर हो रही है। ग्यारह प्रकार की समस्याएँ लगातार बढ़ रही हैं जिनमें "(1)चोरी,डकैती,लूट(2)बलात्कार(3) मिलावट, कमतौल (4)जालसाजी, धोखाधड़ी (5) हिंसा, आतंक (6) भ्रष्टाचार (7) चरित्रपतन (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11)श्रम शोषण " शामिल हैं। पहले पांच प्रकार के अपराध इसलिये बढ़ रहे हैं कि शासन इन्हें रोकने में आवश्यकता से कम सक्रिय है और बाद की छः समस्याएँ इसलिये बढ़ती जा रही हैं कि शासन इनमें आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप कर रहा है।

मैंने अपने साठ वर्षो के चिन्तन, शोध, और प्रयोगों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि समाज की कीमत पर देश की प्रगति हमारे लिये संतोष का आधार नहीं बन सकती। राज्य व्यवस्था की नीयत ठीक नहीं। वह देश की प्रगति के लिये तो सचेष्ट है किन्तु समाज व्यवस्था को लगातार तोड़ा जा रहा हैं। आठ आधार "(1)धर्म (2)जाति(3)भाषा (4) क्षेत्रीयता(5) उम्र(6)लिंग(7) गरीब, अमीर (8)उत्पादक उपभोक्ता" पर वर्ग विद्वेष , वर्ग संघर्ष को लगातार हवा दी जा रही है। ये आठों आधार प्रतिदिन, चौबीसों घंटे साठ वर्षो से लगातार परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था को कमजोर करने में सक्रिय हैं और भारत के सभी राजनैतिक दल पूरी इमानदारी से आठों प्रकार के वर्ग निर्माण के कार्य में सक्रिय हैं ।राजनेताओं ने लोकतंत्र की परिभाषा " लोक नियंत्रित तंत्र को बदलकर लोक नियुक्त तंत्र बना दिया है। इस परिभाषा परिवर्तन के आधार पर ही हमारी संवैधानिक व्यवस्था हमारी प्रबंधक न होकर संरक्षक के रूप में हमसे व्यवहार कर रही है। समाज एक दिन का मालिक और शेष पांच वर्षो के लिये गुलाम बनाकर रखा जा रहा है। मैंने दो हजार चार से आठ तक के पांच वर्षो में दिल्ली में रहकर अच्छे अच्छे राजनेताओं को समझाने की कोशिश की किन्तु सबकुछ समझने के बाद भी कोई लोकतंत्र को लोकनियंत्रित तंत्र की दिशा देने हेतु सहमत नहीं हुआ।

अन्त में मैंने वानप्रस्थ स्वीकार करके समाज सशक्तिकरण राज्य कमजोरीकरण का नारा दिया। दो दिशाओं में काम चल रहा है (1) रामानुजगंज सरगुजा छत्तीसगढ़ के एक सौ तीस गांवों में नई समाज रचना। यह कार्य इसी माह से शुरू हुआ है और पचीस दिसंबर से एक जनवरी तक के इसी वर्ष के आठ दिनों में रामानुजगंज में बैठकर इस रचना के परिणामों की समीक्षा और नई मार्ग दर्शक नीति की घोषणा करेंगे। ग्राम सभा सशक्तिकरण इसका आधार होगा। (2) प्रयोग क्षेत्र रामानुजगंज से बाहर पूरे देश में अनेक विषयों पर विचार मंथन। हम समाज

को एक दिशा देंगे और वह है समाज सशक्तिकरण राज्य कमजोरीकरण। किन्तु हम विचार मंथन तक ही सीमित रहेंगे। इस संबंध में कोई प्रयोग, कोई आंदोलन, कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। हम कोई विचार प्रचार नहीं करेंगे। यहॉ तक कि मेरे विचार भी मंथन तक ही सीमित होंगे। इस कार्य के लिये ज्ञान तत्व पाक्षिक, काश इंडिया डाट काम, ज्ञान कथा, प्रश्नोत्तर आदि सहायक उपादान हैं।

आपसे निवेदन है कि आप यथा संभव रामानुजगंज आकर हमारा मार्गदर्शन करिये तथा विचार मंथन में यथाशक्ति सहयोग करिये। विचार मंथन की शुरूआत यहीं से करिये कि क्या देश धर्म और समाज एक है। यदि अन्तर है तो इनमें से बड़ा कौन है? इस संबंध में यदि आप संवाद चाहेंगे तो काश इन्डिया आपकी मदद करेगा।

4.डा0 सुनीलम् जनसत्ता इक्कीस सितम्बर

विचार– समाजवाद को जब परिभाषित किया गया तब उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व की स्थापना और निजी स्वामित्व की समाप्ति को समाजवाद का लक्ष्य माना गया। लेकिन आज समाजवाद का लक्ष्य यह नहीं हो सकता। आज समाजवादियों के समक्ष प्रश्न यह है कि वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण से कैसे निपटा जाय? हमें समझना होगा कि समाजवाद में राज्य का स्वरूप कैसा हो? राज्य का कल्याणकारी स्वरूप बनाने के पीछे मजदूरों की सौ डेढ़ सौ वर्षो की कुर्बानी थी। पूंजीवादी व्यवस्था में राज्य की भूमिका को न्यूनतम किये जाने के पक्ष में आग्रह ने राज्य की कल्याणकारी भूमिका को गहरी चोट पहुॅचाई हैं। राज्य की भूमिका की सर्वाधिक आवश्यकता किसको है? उन्हें, जो बाजार के लिये अनुत्पादक हैं अर्थात् बच्चे, बुजुर्ग, निराश्रित, घरेलू महिलाएॅ, विकलॉग, बेरोजगार आदि। आज समाज में इनकी हालत क्या है? इसका दोषी कौन?

उत्तर– समाजवाद की वास्तविक अवधारणा को बदलकर जब यूरोप के कुछ देशों ने नई परिभाषा दी तब उनका उद्देश्य समाज सशक्तिकरण न होकर समाजवाद के नाम पर राज्य में अपनी भूमिका की तलाश थी। उन्होंने जो परिभाषा बनाई वह साम्यवाद की आंधी से बचने के लिये बीच का मार्ग थी अथवा पूंजीवाद से टकराव के लिये थी यह कहना मेरे लिये संभव नहीं किन्तु मैं यह अवश्य कह सकता हूॅ कि उक्त परिभाषा न समाज ने बनाई न समाज के लिये बनाई गई। यह परिभाषा पूरी तरह समाज शब्द का अपने हित में उपयोग करने के लिये बनी। आप राजनीति में विधायक रह चुके हैं। आप समाजवादी दल के राष्ट्रीय पदाधिकारी हैं। आपने यूरोप द्वारा गढ़ी गई परिभाषा को आधार माना है। अब स्थितियॉ वैसी नहीं। अब हम भारत में हैं। हम ऐसी विकृत परिभाषाएॅ संशोधित कर रहे हैं। समाजवाद का यह अर्थ नहीं हो सकता कि समाज जिसे चुने वह शासक या गवर्नमेंट हो। वह समाज में मालिक के समान व्यवहार करें ।वह समाज के अधिकार और कर्तव्यों की सीमा रेखा बनाये। वह जैसा चाहे और जब चाहे तब संविधान में भी संशोधन कर ले। वह जब चाहे तब अपना वेतन भत्ता बढ़ा ले। अब तो समाजवाद की नई परिभाषा यह होगी कि राज्य समाज का मैनेजर होगा। समाज उसे जितने अधिकार देगा वह उस सीमा तक ही उपयोग करेगा। वह समाज की स्वीकृति से ही संविधान संशोधित कर सकेगा आदि आदि।

नये समाजवाद में अधिकार उपर से नीचे न आकर नीचे से उपर जायेंगे। बच्चे,बुढ़े , निराश्रित, घरेलू, महिलाएॅ, विकलांग, बेरोजगार आदि अपने अपने परिवार में मिलकर सामूहिक व्यवस्था करेंगे। यदि कोई परिवार से हट जायेगा और अकेला रहेगा तब उसकी चिन्ता ग्राम सभा करेगी । घरेलू महिला या बच्चे की चिन्ता आपके समाजवाद में दिल्ली सरकार करेगी और हमारे समाजवाद में परिवार या गांव करेगा न कि सरकार। निजी स्वामित्व भी नहीं रहेगा और सरकारी स्वामित्व भी नहीं रहेगा। आपके समाजवाद में निजी स्वामित्व समाप्त होकर सबकुछ सरकारी होगा। हमारे समाजवाद में परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर परिवार का, गांव की सम्पत्ति पर गांव का स्वामित्व होगा। सरकार को सिर्फ आवश्यकतानुसार ही सम्पत्ति का स्वामित्व दिया जायेगा और वह भी समाज की मर्जी से। समाज राष्ट्र तक सीमित न रहकर विश्व व्यवस्था तक होगा। वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण जैसे शब्दों का न तो अंधानुकरण होगा न ही इनका उपयोग सत्ता लोलुपों के काम आने दिया जायेगा। मैं भी जीवन भर समाजवादी रहा हूॅ गांधी, लोहिया, जयप्रकाश के समाजवाद के वास्तविक अर्थ को समझा है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप यूरोप के समाजवाद के अर्थ को छोड़े और भारतीय संदर्भ में नई परिभाषा पर सोचना शुरू करें। अब वह जमाना लौटकर नहीं आने वाला कि समाजवाद के नाम पर समाज को गुलाम बनाने की नीतियां चलती रहें।यही कारण है की समाजवाद शब्द को छोड़कर हम लोगों ने समानार्थी शब्द लोकस्वराज्य आगे बढ़ाना शुरू किया

श्री रामकृष्ण पौराणिक वृंदावन वार्ड, सागर मध्यप्रदेश

विचार – आप अपने विचार वेब साइट में संकलित कर रहे हैं। आपके लेख से लगा कि ज्ञानतत्व के कुछ अंक अप्राप्त हैं। ज्ञान तत्व के अंक अमूल्य धरोहर हैं। सौ से ज्यादा अंक तो मेरे पास सुरक्षित हैं। आवश्यकतानुसार सेवा का अवसर दीजियेगा।

हिंसा में विश्वास रखने वाले जो तीन तत्व आपने रखें हैं उनमें इस्लाम के संबंध में तो पूरा संसार जानता और मानता है। यह भी किन्हीं देशों को ज्ञात है कि आतंकवाद का विश्व का श्रेष्ठतम एक मात्र कारखाना पाकिस्तान है

और रहेगा क्योंकि अमेरिका और चीन को उसकी अनिवार्यता अपने अपने हितों के रक्षार्थ है। अतएव आतंकवाद से निपटने में भारतीय नेताओं की लल्लों चप्पों से या काश्मीर सौंप देने से कभी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कम्युनिट दर्शन के व्याख्याकार लेनिन ने हिंसा को अंतिम आवश्यक शर्त माना था पर स्टालिन और माओवादियों ने इसे खुलेआम स्वीकार किया है। संघ परिवार द्वारा किसी दर्शन या वाद की रचना नहीं की। उनके प्रमुख दो नेता श्री हेडगेवार और श्री गोलवरकर के विचारों का उनकी रचनाओं में जो प्रमुख तत्व रहा है वह हे सदियों से पीड़ित और बिखरी (बिखरे समाज) के रूप में जीवित हिन्दू जाति को बढावा देकर एक सूत्र से बांधना जिससे उसे कोई भयभीत न कर सके न उस पर आक्रमण हो सके। यदि ऐसा हो तो हिंदू समाज में प्रतिकार की क्षमता हो। मेरे विचार में ये नेता इतिहास की पुरानी गाथाओं के पीछे लगे रहे। हिन्दु शासकों की शौर्यगाथा तथा मुस्लिम शासकों के अत्याचार की कथाएं भावनात्मक तथ्य है पर एकता के व्यावहारिक सूत्र जिससे जातीय समरसता हो उसमें नहीं । इस कारण ये हिंसक रूप में जाने जाते है जबकि इनका घ्येय किया पर प्रतिकिया रहा है।

01.गांधी जी के संबंध में आपने अति श्रेष्ठ चिंतन सार दिया हैं।

उत्तर – ज्ञान तत्व के अंक सुरक्षित रखने संबंधी सूचना बहुत उपयोगी हैं। आवश्यकतानुसार सूचित करूंगा। हिंसक मार्ग से तात्कालिक सफलता मिलती हैं। रोने वाले बच्चे को मां अधिक दूध पिला देती है । यदि मां को विश्वास हो जाय कि बच्चा अधिक दूध पीने के लिये रोने का अभ्यस्त हो गया है तब मां का व्यवहार बदल भी सकता हैं । इस्लाम को हिंसा से बहुत लाभ मिला। पश्चिम ने साम्यवाद से प्रथम निपटना शुरू किया और अब साम्यवाद का खतरा खतम होने के बाद इस्लाम को चुनौती दी जा रही है। इस्लाम में भी जो सूफी हैं वे आमतौर पर अहिंसक है। अन्य लोगों में भी बहुत लोग ऐसे हैं जो बहती गंगा में हाथ धोने वाले हैं। ऐसे मुसलमान टकराव शुरू होते ही भाग खडें होंगे। इसके बाद जो बचेंगे उनसे मिलजुलकर निपट लिया जाय। आतंकवाद से निपटने के लिये बुद्धि ज्यादा महत्वपूर्ण है और डंडा कम। डंडे का प्रयोग बिल्कुल अन्तिम स्थिति में साम दाम और भेद के बाद करना चाहियें। संघ परिवार बुद्धि का उपयोग छोड़कर सिर्फ डंडा का उपयोग करना चाहता है जो गलत है।

जब तक संघ परिवार हिन्दुत्व की सुरक्षा तक सीमित था तब तक उसकी नीयत पर संदेह नहीं था। किन्तु जब उसने हिन्दुत्व का उपयोग सत्ता के लिये शुरू कर दिया तब उसकी नीयत पर भी संदेह हो गया। विजयकौशल जी महाराज एक बड़े सन्त हैं और संघ परिवार से जुड़े रहे हैं। उनसे एक दो बार गंभीर चर्चा हुई तो उन्होंने भी महसूस किया कि संघ की लाइन गड़बड़ा रही है। इस्लामिक आतंकवाद से निपटने के लिये हिन्दू आतंकवाद बिल्कुल मूर्खतापूर्ण कदम होगा। यह समय हिन्दू संगठन का नहीं है। क्योंकि इस्लामिक आतंकवाद खतरनाक स्थिति तक बढ़ रहा हैं। ऐसे आतंकवाद को मिलजुल कर परास्त करने की जरूरत है और ऐसे संयुक्त प्रयास में संघ का मेरी मुर्गी की तीन टांग बाधक है।

संघ ने इस्लामिक आतंकवाद के विरूद्ध हमें सचेत किया इसके लिये वह बधाई का पात्र है। किन्तु इस बधाई को वह सत्ता के रूप में बदलना चाहता है इसके लिये वह घृणा करने योग्य है। किसी महिला की गुण्डों से सुरक्षा करने का अर्थ उसके साथ बलात्कार का लाइसेंस नहीं है। हम इस्लामिक आतंकवाद से निपटने की योजना पर एक दूसरे के सम्पर्क में हैं चाहे वह हिन्दू हो या न हो। जो भी निर्णय होगा वह सोच समझकर होगा,सामूहिक होगा। यदि आतंक का जवाब आतंक से भी देना होगा तो वह सामूहिक निर्णय होगा। आतंकवाद सिर्फ हिन्दुत्व के लिये ही खतरा नहीं है। वह सम्पूर्ण मानवजाति के लिये खतरा है। बन्दूक का उपयोग सुरक्षा तक ही सीमित है और ऐसी सुरक्षा की आवश्यकता समाज को भी दिखनी चाहिये। सिर्फ आपके कहने से नहीं चलेगा।

वैसे भी संघ की प्रगति में ठहराव आ गया है। संघ के भी कुछ जिम्मेदार लोग महसूस कर रहे हैं कि अब आगे मार्ग नहीं हैं। सन् दो हजार पांच के बाद संघ की भूमिका में उल्लेखनीय गिरावट आई है। या तो संघ को अपनी नीतियों पर फिर से विचार करना होगा अथवा हमारे जैसे शान्ति प्रिय लोग ही संघ के संबंध में सोचना शुरू कर दिये हैं। मैं तो समझ ही नहीं पा रहा कि राष्ट्र सशक्तिकरण के स्थान पर परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था सशक्तिकरण में संघ क्यों नहीं बढ़ना चाहता। संघ ने समान नागरिक संहिता, धर्म परिवर्तन पर रोक अल्प संख्यक बहुसंख्यक अवधारणा की समाप्ति जैसे मुद्दों को किनारे करके मंदिर और गाय जैसे भावनात्मक मुद्दों को क्यों आगे किया। सुप्रीम कोर्ट ने हिन्दुत्व को धर्म न कहकर जीवन पद्धति माना है। हिन्दुत्व एक समाज व्यवस्था है जिसमें सभी धर्मो के लोग एक साथ शान्ति और स्वतंत्रता पूर्वक रह सकते हैं। संघ इस हिन्दू समाज की परिभाषा को हिन्दू धर्म की लाइन पर ढकेलना चाहता है, इसके लिये हम तैयार नहीं। मैं चाहता हूँ कि हम इस विषय पर और विचारों का आदान प्रदान करें। संघ की लाइन पर आगे कुछ नहीं दिखता इसलिये अब आगे देखने की जरूरत है।

5.श्री शान्ताकुमार, पूर्व मुख्य मंत्री हिमांचल

सुझाव– भारत का कालाधन कई लाख करोड़ विदेशों में जमा हैं। कुछ जानकार इसे एक लाख करोड़ कहते हैं तो कुछ दस लाख करोड़ तक। यह धन लगातार बढ़ता ही जा रहा है। भारत सरकार यदि यह धन वापस कर ले तो भारत का कर्ज भी उतर सकता है और गरीबी भी दूर हो सकती है। हसन अली का नाम प्रकाश में आया तब भी भारत सरकार ने कुछ नहीं किया। अब भी भारत का अरबों खरबों रूपया विदेशी बैंकों में जमा होता है। हमें चाहिये कि विदेशों में जमा भारतीय काला धन भारत लाने की पहल करें।

समीक्षा– यह सच है कि भारत के लोगों का बड़ी मात्रा में काला धन विदेशों में जमा है और अब भी हो रहा हैं। आप स्वयं केन्द्रीय मंत्री रह चुके हैं। आप जब सरकार में थे उसके पूर्व भी बड़ी मात्रा में यह धन विदेशों में जमा था। उस कार्यकाल में भी न कालाधन बनना बन्द हुआ था न ही विदेशों में जमा होना। जो भी सत्ता से बाहर होता है उसे यह दूर की कौड़ी नजदीक दिखती ही है। धन आ जायेगा तो उससे बहुत लाभ होगा ऐसी बातें तो सड़क छाप आदमी भी जानता है।

आप उक्त धन लाने की बात कर रहे हैं। आप कोई रामदेव जी तो हैं नहीं जिन्हें नियम कानून अनभिज्ञ मानकर उनकी ऐसी बातों को महत्व न दिया जाय। आप कोई लालकृष्ण आडवाणी भी नहीं हैं जो सत्ता की छटपटाहट में कुछ भी मुद्दे उठाते रहें। हम लोगों की नजर में आप भारत के एक गंभीर व्यक्तित्व हैं और सोच समझकर ही बोलते हैं। इसीलिये आपके कथन की समीक्षा करनी उचित प्रतीत हुई।

विदेशों से धन वापस लाने की चर्चा हो रही है। प्रश्न उठता है कि क्या अब भारत से विदेशों में काला धन जाना बन्द हो गया। आप भी मानते हैं कि बड़ी मात्रा में भारत का काला धन विदेशों में जा रहा है। विदेशों में गया हुआ धन तो अन्य देशों के साथ द्विपक्षीय संबंधों पर निर्भर करता है। हम अकेले ही निश्चित रूप से निर्णायक कदम नहीं उठा सकते। हम सिर्फ प्रयत्न मात्र ही कर सकते है। किन्तु भारत का काला धन अब विदेशों में न जाय इस नीति में तो हम पूरी तरह स्वतंत्र हैं। हम विचार करें कि काला धन भारत से इसलिये जा रहा है कि (1) भारत से काला धन विदेश भेजने में कोई बड़ी बाधा नहीं है (2) ऐसे धन को सफेद बनाकर भारत में रखना कठिन है। हम भारत में तो ऐसे धन के रखने पर कठोर दबाव बना रहे हैं और उसके विदेश जाने को रोकने की हमारे पास ताकत नहीं है। यदि काले धन को विदेश जाने से रोकना है तो उसके भारत में ही रहने को आकर्षक बनाना होगा और बाहर जाने के छिद्रों पर अधिक कठोरता करनी होगी। हम भारत में पूंजी को किसी भी मात्रा में एकत्रित होने की छूट दे दें और आय कर को और ज्यादा सरल बना दें या यदि आवश्यक हो तो समाप्त ही कर दें तो काला धन सारा का सारा भारत में ही रह जायेगा। आपको मालूम होना चाहिये कि पण्डित नेहरू की समाजवादी सनक के कारण प्राचीन समय में आय पर नब्बे प्रतिशत तक सरकार कर वसूल करती थी। आप कल्पना करिये कि कमाई का नब्बे प्रतिशत सरकार को देना कितनी मजबूरी रही होगी। परिणाम हुआ कि तेजी से काला धन बनने लगा। यह धन जितना ज्यादा बनने लगा उतनी ही सरकार की पकड़ कमजोर हुई। आर्थिक विषमता को आर्थिक तरीकों से रोकने की बुद्धिमानी की जगह कानूनी तरीके से रोकने की जिद ने काले धन की समानान्तर अर्थ व्यवस्था खड़ी कर दी। जब ऐसा धन बहुत अधिक बढ़ा और विदेशों का आवागमन सुलभ हुआ तो प्रवाह विदेशों की ओर बढ़ा। सरकार ने प्रवाह को रोकने की नीतिगत पहल न करके मजबूरी में टैक्स के रेट घटाये। यदि उसी समय टैक्स के रेट एकाएक तीस चालीस प्रतिशत तक कम कर देते तो काले धन का प्रवाह रूक जाता किन्तु सरकार तो समाजवाद को आदर्श मानकर चल रही थी इसलिये उसने मजबूत पहल नहीं की और मजबूर पहल का परिणाम नहीं हुआ। वर्तमान वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी टैक्स की रेट घटाकर दस प्रतिशत करना चाहते थे किन्तु समाजवाद के नीतिगत निर्णयों ने व्यावहारिक निर्णय को रोक दिया और ऐसी पहल मूर्त रूप नहीं ले सकी। फिर भी यह स्पष्ट है कि ऐसा व्यावसायिक काला धन बनना कम हुआ है।

दूसरा काला धन बन रहा है भ्रष्टाचार से। व्यापारी या कर्मचारी ऐसे धन पर टैक्स देना भी चाहें तो नहीं दे सकते क्योंकि आय के श्रोत बताने आवश्यक है। यह भी एक मजबूरी है कि भ्रष्टाचार से धन तो बड़ी मात्रा में इकट्ठा हो रहा है किन्तु उसे भारत में छिपाना भी संभव नहीं और सफेद करना भी संभव नहीं । भ्रष्टाचार बिल्कुल आम है। उसमें किसी तरह का खतरा नहीं। कोई इक्का दुक्का भाग्यहीन फंस जाता है जो प्रतीकात्मक ही हैं। यह भ्रष्टाचार का धन अन्ततः विदेश जाना मजबूरी है। हम या तो भ्रष्टाचार पर रोक थाम के उपाय करें अथवा ऐसे धन को बिना कारण पूछे सफेद धन बन जाने दें। भारत दुनिया के उन गिने चुने देशों में शामिल है जहॉ भ्रष्टाचार की खोज में धन तक पहुँचने की प्रथा नहीं है। यहॉ धन देखकर भ्रष्टाचार की खोज होती हैं।झारखंड के मुख्यमंत्री के पास अकूत धन मिला तब भ्रष्टाचार की खोजबीन शुरू हुई। यह एक सुविधाजनक मार्ग तो है किन्तु यह दूरगामी नुकसान करेगा। अब हर आदमी भ्रष्टाचार से न डरकर पैसा एकत्रीकरण से डरेगा और उसे कहीं ठिकाने लगाने की पहले सतर्कता बरतेगा। आज यह धारणा फैलाई जा रही है कि धन भ्रष्टाचार से ही इकट्ठा होता है। सच बात यह है कि भ्रष्टाचार से धन इकट्ठा होता है। लेकिन धन बिना भ्रष्टाचार के भी इकट्ठा हो सकता है। भ्रष्टाचार गलत है धन नहीं। इसलिये भ्रष्टाचार की रोक थाम करनी चाहिये धन की नहीं। यदि धन को आधार बनाया गया तो कालान्तर में भ्रष्टाचार बढ़ेगा और धन छिपेगा जैसा कि आज हो रहा है।

मैं जानता हूँ कि ये नीतियॉ आर्थिक असमानता को बढ़ायेगी। किन्तु हमारे पास और रास्ता क्या है ? हम आर्थिक विषमता में कमी और काले धन का निर्माण या विदेश पलायन को एक साथ नहीं रोक सकते। हमें किसी एक से या तो समझौता करना होगा या उसकी रोकथाम के कोई अन्य मार्ग निकालने होंगे। यह कैसे संभव है कि भ्रष्टाचार में लिप्त लोग भ्रष्टाचार की रोकथाम की मुहिम को सफल होने देंगे। जनसत्ता सताइस सितम्बर में एक विद्वान लेखक आनन्द प्रधान जी ने भ्रष्टाचार नियंत्रण के लिये सुझाव दिया कि भ्रष्टाचार की पोल खोलने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं की सुरक्षा के लिये विशेष कानून बने। अपने लेख में ही उन्होंने लिखा कि पूरी राजनैतिक व्यवस्था ही आकंठ भ्रष्टाचार में डूबी हुई है। प्रधान जी ने ही लिखा है कि पिछले आठ वर्षो के विषय में अमेरिकी समाचार के अनुसार भारत का कई खरब का काला धन विदेश चला गया। प्रश्न उठता है कि हम कानून बनाने का

निवेदन भी उसी व्यवस्था से कर रहे हैं जो आकंठ भ्रष्टाचार में डूबी है। अनेक विद्वान कहते हैं कि यदि हमारी नीयत ठीक हो जावे तो भ्रष्टाचार भी खतम हो जावे और व्यवस्था भी ठीक हो जावे। ऐसा सुझाव देने वालों की विद्वत्ता पर भी संदेह होता हैं। कुछ वैसा ही सुझाव आनन्द प्रधान जी का है। देश भर में फैले भ्रष्टाचार की उत्पत्ति की मात्रा यदि एक वर्ष में सौ टन है और हमारी नियंत्रण क्षमता एक टन की है तो हम पहले भ्रष्टाचार को खुली छूट देकर उसकी वार्षिक उत्पत्ति को एक टन तक सीमित करें और तब उस एक टन को कड़ाई से रोक लें। क्या जरूरत है आपको इतनी बड़ी मात्रा में अनाज खरीदने की। उस अनाज खरीद में भ्रष्टाचार होगा, फिर उसमें पी.डी.एस. का भ्रष्टाचार होगा, फिर उसमें अव्यवस्था होगी और अनाज सड़ेगा, इससे होने वाले नुकसान की भरपाई के लिये अनाज, तिलहन, दाल जैसी कृषि उपजों पर भारी कर लगाकर भरपाई होगी। यह सब नहीं होगा तो भ्रष्टाचार नहीं होगा। सच्चाई यह है कि भ्रष्टाचार के लिये ही ये योजनाएँ बनाई जाती हैं। और बाद में भ्रष्टाचार का रोना रोया जाता है।

यदि हम काले धन की समस्या का समाधान चाहते हैं तो इसकी उत्पत्ति को रोकना होगा। कोई भी धन किसी भी सीमा तक रखा जा सकता हैं। उस पर न कोई सीमा होगी न ही आय के श्रोत पूछे जायेंगे। कोई इन्कम टैक्स भी नहीं होगा। सम्पूर्ण चल अचल सम्पत्ति पर सिर्फ एक कर लगेगा जो वार्षिक एक या दो प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। आपका सारा विदेशों का काला धन धीरे धीरे भारत आना शुरू हो जायेगा। जाना तो बिल्कुल बन्द हो ही जायेगा। यदि हम भ्रष्टाचार रोकना चाहते है तो सम्पूर्ण निजीकरण कर दीजिये। भ्रष्टाचार की उत्पत्ति ही बन्द हो जायेगी। धन के द्वारा भ्रष्टाचार की खोज बन्द। भ्रष्टाचार के आधार पर धन की जॉच होनी चाहियें। इसके बाद भी यदि भ्रष्टाचार होता है तो कठोर दण्ड का प्रावधान रहे।

इन उपायों से आर्थिक विषमता बढ़ने का खतरा हैं उसके लिये हम कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करके उक्त सारा धन या तो प्रत्येक व्यक्ति में बराबर बांट दे या एक सीमा रेखा से नीचे वालों को बराबर बराबर दे दें। आर्थिक विषमता खुद ही कम हो जायेगी।

मेरे विचार में काला धन, भ्रष्टाचार , आर्थिक विषमता आदि समस्याएँ न व्यक्ति के व्यक्तिगत चरित्र से संबंध रखती हैं न ही प्राकृतिक हैं। ये समस्याएँ पूरी तरह राजनैतिक व्यवस्था से संबंध रखती हैं और राजनैतिक व्यवस्था में सुधार से ही दूर होनी संभव है।

6.श्री अभिजीत द्वारा काश इन्डिया डाट काम

आपने नागरिकों को बन्दूक पिस्तौल रखने की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने की वकालत करते हुए पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जी की आलोचना की है। मैं आपकी आलोचना से सहमत नहीं हूँ। इस वर्ष जनवरी में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में साफ किया कि प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपनी स्वयं सुरक्षा का अधिकार है। शर्म की बात यह है कि इसी दौरान हमारी अपनी सरकार ने इस अधिकार को व्यावहारिक रूप से अमीर और शक्तिशाली नागरिकों तक ही सीमित करने की ओर कदम उठाये।

स्वयं सुरक्षा का अधिकार हर नागरिक को यह हक देता है कि वह अपने और अपनी संपत्ति को अपराधिक हमले से बचाने के लिए पूरी शक्ति का इस्तेमाल कर सके। यह अधिकार केवल स्वयं– सुरक्षा तक ही सीमित नहीं है, यह नागरिकों को एक दूसरे की मदद करने का भी हक प्रदान करता है। हमारे माननीय सुप्रीम कोर्ट ने यहॉ तक कहा है कि भारतीय नागरिकों को कायर नहीं होना चाहिए और डट कर अपराधियों का सामना करना चाहिए। यह अधिकार केवल कोर्टो और नियमों तक ही सीमित नहीं है। हमारे संविधान का अनुच्छेद 21 हर नागरिक के जीवन और आजादी के अधिकार को पूरी तरह से पहचानता हैं। यह कोई नई धारणा नहीं है, यह अधिकार हर युग और हर सभ्यता में नागरिकों का एक मूल हक माना गया है। इस अधिकार का यह मतलब नहीं है कि सरकार हर नागरिक के जीवन, आजादी और अधिकारों कि सुरक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाये, बल्कि यह उन सब अधिकारों में से है जिन की सुरक्षा का उत्तरदायित्व हर सरकार पर है।

नागरिकों की हर सरकार से जो उम्मीदें रहती है, उन में से एक प्रथम उम्मीद यह है कि सरकार हर नागरिक की जान, माल और अधिकारों की सुरक्षा करेगी क्या हमारे नागरिक सुरक्षित हैं? आज क्या नागरिक सुरक्षित महसूस करते है? अगर हम 1953–2007 तक के हिंसक अपराधों के आंकड़ों पर नजर डालें तो एक खौफनाक चित्र दिखाई पड़ता है, खूनी हमलों में 229.7 प्रतिशत का इजाफा, बलात्कारों में 733.8 प्रतिशत का इजाफा, अपहरणों में 423.9 प्रतिशत का इजाफा, आदि। कुछ लोगों का मानना है कि हिंसक वारदात गॉव या छोटे कस्बों में ही ज्यादा संख्या में होती है, यह केवल एक भ्रम है। भारत के 35 मुख्य शहरों में आपने प्रान्तों से ज्यादा हिंसक घटनायें घटी है और राजधानी दिल्ली में तो देश कि सबसे ज्यादा बलात्कार की घटनायें रिपोर्ट होती है।

हम अपने बहादुर पुलिस कर्मियों का निरादर नहीं करना चाहते, मगर सच. तो यह है कि भारत में जनसंख्या अनुसार पूरे संसार में सब से कम पुलिसकर्मियों की संख्या है। पुलिसकर्मियों कि कम संख्या, उसके उपर

अच्छी ट्रेनिंग न होना और जरूरी उपकरणों का अभाव, डिपार्टमेंट में भ्रष्टाचार और नेता और अधिकारियों का हस्तक्षेप, इन सब के रहते कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारी पुलिस भारतीय नागरिकों की सुरक्षा करने में सक्षम नहीं है। जिन देशों में सबसे सक्षम पुलिस मानी जाती है, उनमें भी पाया गया है कि मोकाए वारदात पर पुलिस कभी भी समय पर नहीं पहुँच पाती। सच तो यह है कि कोई भी पुलिस फोर्स हर समय हर जगह नहीं हो सकती और रिपोर्ट के बाद जब तक वह मौके पर पहुंचते हैं, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। पुलिस अपराध के बाद उसकी छानबीन तो कर सकती है, मगर यह संभव नहीं कि पुलिस हर नागरिक को अंगरक्षक मोहिया कराये।

मोकाए वारदात पर सबसे पहले पीड़ित नागरिक ही मौजूद होता है, इसलिए स्वयं–सुरक्षा का अधिकार हर सभ्यता और हर युग में एक मूल अधिकार माना गया है।

अपराधी हमेशा यह सोच कर अपराध करता है कि वह बच के निकल पायेगा। वह सोचता है कि यह पीड़ित की किसी भी तरह से लाभ उठा सकता है। क्योंकि अपराधी हमले से पहले पीड़ित से अधिक ताकत की तैयारी करने के बाद ही हमला करता है। अगर हमला करने पर पीड़ित अपराधी का डट के मुकाबला कर पाए तो पाया गया है कि ज्यादातर हमलावर मौंके से भाग पड़ते हैं। यह मुकाबला तभी संभव है जब अपराधी और पीड़ित की शक्ति बराबर हो मगर दूसरी ओर पीड़ित को न तो पहले से अपराधिक हमले की कोई सूचना होती है और न ही उस पर हमलावरों से ज्यादा तैयारी या ताकत होती है। ऐसे में पीड़ित नागरिक पर सिर्फ एक ही उपाए बचता है, और वह यह कि वह नागरिक अपने बचाव के लिए बंदूक का सही उपयोग करें। केवल बंदूक ही एक ऐसा यन्त्र है, जिसके सही उपयोग से पीड़ित नागरिक हमलावरों के ज्यादा संख्या और ताकत का डट के सामना कर सकता है। इनका सही और सुरक्षित प्रयोग कुछ ही दिनों की ट्रेनिंग में सीखा जा सकता है। बंदूकों को हम एक तरह के बीमा की तरह सोच सकते हैं। हम बीमा लेते समय सोचतें हैं कि हमें इसका कभी प्रयोग न करना पड़े– मगर समय आने पर यह हमारे सुरक्षा कवच की तरह काम आता है। बिना बंदूकों के,बिना अपराधियों का मुकाबला करने के यंत्रों के, नागरिकों के स्वयं–सुरक्षा का अधिकार का कोई महत्व नहीं रह जाता। यह केवल रह जाते हैं एक कागज के टुकड़े पर लिखे हुए कुछ शब्द।

हमारे स्वतंत्रता सेनानियों को इस मूल सत्य की अच्छी तरह से पहचान थी। पूरे स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हर नागरिक को शस्त्र रखने के अधिकार की मांग की जाती रही यहॉ तक कि महात्मा गांधी ने कहा था कि ब्रिटिश राज के कुकर्मो में से सबसे बुरा कर्म इतिहास इसे ही मानेगा कि उन्होंने भारतीय नागरिकों से उनका शस्त्र रखने का मूल अधिकार छीन लिया। आखिरकार शस्त्र अधिनियम 1959 में इस अधिकार को कानूनी तौर पर मान्यता दी गई और यह सोचा गया था कि ब्रिटिश राज के 200 वर्ष की नाइंसाफी का हो गया अंत।

लेकिन कडवा सच तो यह है कि 1980 के दशक के दौरान से लेकर अब तक इस शस्त्र अधिनियम में किए गये फेरबदल की वजह से इस अधिकार को नागरिकों से दुबारा छीना जा रहा हैं। आज के समय में, किसी भी नागरिक को शस्त्र का लाइसेंस बनवाने के लिए या तो किसी नेता से सिफारिश या किसी अधिकारी की जेब गरम करने की जरूरत पड़ती है। अगर किसी नागरिक को शस्त्र लाइसेंस मिल भी जाए,तब भी सरकार की नीति ऐसी बनी हुई हैं, कि स्वयं– सुरक्षा के लिए बनी सामान्य बंदूक जो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में केवल रू0 5000 से 10000/– तक में मिल जाती है, वह भारत में रू0 80000 से 10 लाख, या उससे भी ज्यादा में बिकती है।

सरकार कहती रही हैं कि ये नीतियॉ शस्त्रों को बदमाशों के हाथ से दूर रखने के लिए लागू की गई है। जब कि सच तो यह है कि कोई भी बदमाश न तो लाइन में लग कर शस्त्र के लाइसेंस की अर्जी लगा रहा है और न ही उन्हें इन नीतियों से हथियार खरीदने में कोई परेशानी हो रही है जबकि आम नागरिक को पहले बाबुओं और पुलिस से जूझकर लाइसेंस लेना पड़ता है और फिर लाइसेंसी हथियार को खरीदने के लिए बहुत सारे पैसे जुटाने पड़ते है, बदमाशों पर न तो लाइसेंस की रोक टोक है और उन्हें हथियार भी बहुत कम रूपयों में मिल जाते है– सब को मालूम है कि देसी कट्टे केवल रूपये 500 में भी मिल जाते है। सरकार के आंकड़े भी यही खुलासा करते है– कि अपराध की वारदातों में लाइसेंस हथियार का इस्तेमाल ना के बराबर है।

प्रश्न यह उठता है– जब बदमाशों और आतंकवादियों के हथियारों पर कोई रोकटोक संभव नहीं, तो आम नागरिक पर यह रोक टोक क्यों? उत्तर जितना सरल है उतना ही शर्मनाक– यह सब सिर्फ इसलिये किया जा रहा है ताकि जनता का ध्यान बटा कर यह बात छुपायी जा सके कि सरकार अपराध और आतंक को काबू करने में कितनी असफल है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि अब हमारी सरकार इन नियमों को बदल के पूरी तरह से **VIP** यों के ही हक में करना चाहती है। **RTI** के द्वारा पता लगाया गया है कि 31 मार्च 2010 को केंद्रीय गृह मंत्रालय ने हर प्रान्त के होम डिपार्टमेंट को नई शस्त्र नीति लागू करने का एक फरमान जारी किया है। हमारे संविधान और संसद का मजाक बनाते हुए केंद्रीय गृह मंत्रालय ने संसद के बनाये हुए शस्त्र कानून को महज एक फरमान के द्वारा बदल दिया। इस गैर कानूनी फरमान को जारी करने के पूरे चार महिने बीतने के बाद अब सुनने में आ रहा है कि केंद्रीय गृह मंत्रालय इसे कानूनी रूप देने के लिए संसद में पेश करने की सोच रहा है। नई नीति, जिसे केंद्रीय गृह

मंत्रालय द्वारा कानून का रूप दिया जा रहा है, के अनुसार किसी भी नागरिक को तब तक शस्त्र लाइसेंस नहीं दिया जायेगा, जब तक वह अपनी जान पर कोई गहरा खतरे का सबूत नहीं दे पाए। सोचने वाली बात है कि किसी के साथ कोई हादसे या दुर्घटना पहले बता कर तो नहीं होती। ऐसा लगता है कि केंद्रीय गृह मंत्रालय चाहता है कि अब से सिर्फ VIP यों को ही शस्त्र लाइसेंस दिया जाये। इस नई नीति का VIP और V VIP यों की ओर रूख सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं है, नई नीति के अनुसार अब कानूनी तौर पर एक नए प्रकार का जातिवाद बनाया गया है। अब से राज्यों के होम डिपार्टमेंट को सिर्फ नीति में निर्धारित VIP और V VIP यों को आल इण्डिया शस्त्र लाइसेंस जारी करने का हक होगा। आम नागरिक को आल इण्डिया शस्त्र लाइसेंस को पाने के लिए अब केंद्रीय गृह मंत्रालय के द्वार खटकाने पड़ेंगे, ठीक उसी तरह जैसे प्रोहिबिटेड बोर शस्त्र लाइसेंस के लिए आजकल करना पड़ता है। इस नीति में और भी कई ऐसे नए नियम है जो कि सिर्फ भ्रष्टाचार को बढ़ावा और नागरिकों को परेशानी ही देंगे।

इन नीतियों से हमारे आम नागरिक अब अपराधियों और आतंकवादियों के लिए और भी आसान शिकार बन जाएंगे, मगर ऐसा लगता है कि इस सरकार को आम नागरिकों कि कोई चिंता नहीं है।

अगर आप को लगता है कि इस नई सरकारी नीति का आप पर कोई असर नहीं पड़ेगा, तो एक बार दुबारा सोचिये इन स्थितियों परः–

आप एक कॉल सेंटर में काम करते हैं और देर रात घर आते समय आप को बदमाश घेर लेते हैं, या फिर आप एक रिटायर्ड नागरिक है और आप के घर में चोर घुस आते है। शायद आप एक गृहिणी है, अपने बच्चों के साथ धर पर अकेली, जब कोई अनजान दरवाजा तोड़ के अंदर घुस आते है, या शायद आप एक व्यापारी है और डकैत आप की जीवन भर की पूँजी लूटना चाहते है। आप किसी बच्चे के मॉ या बाप हो सकते है, जिस नन्हें को कोई आप की ऑखों के सामने अगवा करने कि कोशिश करता है, या आप कोई कुँवारी कन्या है, जिस पर कोई जोर जबरदस्ती करना चाहता है। हमारे नागरिक न जाने ऐसे कितने खतरों का सामना हर रोज करते है, और अगर ऐसी कोई घटना आप के साथ घटे तो बचाव के साधन बहुत कम है।

आम नागरिकों के लिए शस्त्र लाइसेंस को प्राप्त करने के तरीके को सामान्य, भ्रष्टाचार मुक्त और सरल बनाके उन को सही मायने में नागरिकों को स्वयं–सुरक्षा का अधिकार दिलाने की जगह, हमारी सरकार शस्त्रों को केवल अमीरों और ताकतवरों तक ही सीमित करना चाहती है। आम आदमी के हाथों से स्वयं–सुरक्षा के साधन छीन कर उसे अपराधियों का आसान शिकार बनाया जा रहा है।

हम अनुमान लगा सकते है कि 26/11 को मुंबई में अगर चंद नागरिकों पर अपनी स्वयं– सुरक्षा करने के लिए शस्त्र होते, तो शायद इतने मासूमों कि जाने नहीं जाती।
उत्तर– मैं आपसे सहमत हूँ कि प्रत्येक नागरिक को अपनी सुरक्षा का अधिकार है। सच्चाई यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वयं सुरक्षा का अधिकार है। चूँकि स्वयं सुरक्षा प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है इसलिये सुप्रीम कोर्ट के कहने न कहने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

स्वयं सुरक्षा की मजबूरी से बचने के लिये ही हम सबने मिलकर एक सरकार रूपी पहरेदार नियुक्त किया जो हमारी सुरक्षा करे। दुर्भाग्य से हमारा पहरेदार हमारी सुरक्षा को छोड़कर हमारी चापलूसी में लग गया। सुरक्षा कमजोर हुई। आपके ही आंकड़े बताते है कि सब प्रकार के अपराधों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। पहरेदार का तर्क है कि वह तो दिन रात मालिक की सेवा में लगा हैं फिर भी अपराध बढ़ने का कारण यह है कि मालिक स्वयं सुरक्षा के प्रति सक्रिय नहीं है। यदि मालिक अपनी सुरक्षा के प्रति सक्रिय हो जावे तो मालिक को हेल्मेट पहनाना, गांजा छुड़वाना,भरपेट भोजन कराना आदि सारे काम तो मैं कर ही रहा हूँ। साथ में यथा शक्ति मैं भी सुरक्षा में मदद करूंगा किन्तु मालिक स्वयं यदि बन्दूक पिस्तौल रखना शुरू कर दें तो सुरक्षा निश्चित है।

प्रश्न यह नहीं है कि व्यक्ति को बन्दूक पिस्तौल रखने का अधिकार होना चाहिये या नहीं। वह अधिकार है और रहेगा। प्रश्न यह है कि क्या हमारा राज्य इतना सक्षम नहीं कि वह हमारी सुरक्षा का जिम्मा लेकर हमें स्वयं सुरक्षा की चिन्ता से मुक्त कर दे? सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व हैं। यदि राज्य पूरा प्रयत्नशील है और उसके बाद भी अतिरिक्त सुरक्षा की आवश्यकता है तो हम भी उसकी व्यवस्था करेंगे। किन्तु राज्य सुरक्षा और न्याय की जगह जनकल्याण करने लग जावे तथा हमें सुरक्षा और न्याय हेतु सक्रिय होने की सलाह दे यह गलत है । अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिये स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही चालाक नेताओं ने शराब बन्दी, दहेज प्रथा उन्मूलन, जाति धर्म सुधार आदि बेमतलब के काम तो अपने उपर लाद लिये और सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिये हमें स्वयं लाइसेंस प्राप्त करने की सलाह दे दी। वर्तमान केन्द्र सरकार ने कहा है कि जनकल्याण के कार्यो को धीरे धीरे समाज पर छोड़ दे और अपराध नियंत्रण सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है। आपको बन्दूक पिस्तौल रखने की आवश्यकता नहीं। ऐसे प्रयत्नों के लिये गृहमंत्री चिदम्बरम् बधाई के पात्र हैं।

अब हम खुले शस्त्र धारण की व्यावहारिकता पर विचार करें। आपने लिखा है कि भारत में पूरे विश्व की अपेक्षा कम अनुपात में पुलिस की संख्या हैं। उसमें भी अनेक पद खाली हैं। इसका समाधान हम आम नागरिकों को हथियार सुलभ कराने की अपेक्षा पुलिस बल बढ़ाकर क्यों नहीं कर सकते? क्या कठिनाई है? लोग बेरोजगार हैं पैसे की कमी नहीं। जरूरत है किन्तु हम पुलिस बल न बढ़ाकर शिक्षक, ग्रामसेवक, बढ़ा रहे हैं। शिक्षा तो हम स्वयं भी ले लेंगे किन्तु सुरक्षा हमारे अकेले की बस की बात नहीं। फिर भी आप पुलिस और न्यायालय में तो भर्ती करने के पहले दस बार सोचते हैं और अन्य विभागों में एक की जगह तीन भर्ती करते रहते है। आज शरीफ लोगों के मन में कानून का भय बढ़ा है क्योंकि उसके डग डग पर सरकार के कानून उसकी स्वतंत्रता को बाधित कर रहे हैं। दूसरी ओर अपराधियों के मन में कानून का भय घटा है क्योंकि कानून इतने कमजोर है कि उसे सजा होनी ही नहीं हैं कैसी उल्टी खोपड़ी है हमारे कानून बनाने वालों की कि–

(1)भारत के सम्पूर्ण बजट का एक प्रतिशत पुलिस और कोर्ट पर खर्च होता है तो शेष निन्यान्नवे प्रतिशत अन्य विकास कार्यो पर या सेना पर।
(2) भारत में अवैध गांजा रखना अधिक गंभीर अपराध है और अवैध पिस्तौल बन्दूक रखना कम गंभीर
(3) भारत में व्यक्ति को हेल्मेट पहनाना पुलिस का काम है और चोर डाकू से टकराने के लिये बन्दूक पिस्तौल का लाइसेंस स्वयं लेने की सलाह दी जाती है।
(4) आदिवासी हरिजन अपराध, महिला उत्पीड़न, वन अपराध आदि में सबूत का दायित्व अपराधी का है जबकि डकैती, बलात्कार , हत्या जैसे गंभीर अपराधों में सबूत का दायित्व पुलिस पर।
(5) भोपाल गैस दुर्घटना जैसी आपदाओं में मुआवजा दस लाख रूपया प्रति व्यक्ति दिया जाता है तो डकैती हत्या में सरकार की दया पर कभी कभी एक दो लाख मिल जाता है।

सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि समाज मजबूत के समक्ष कायरों के समान व्यवहार करता है और कमजोरों के समक्ष हिंसक हो जाता है। लगातार समाज में हिंसा के प्रति विश्वास बढ़ रहा हैं। लोग अपराधियों के खिलाफ गवाही देने से डर रहे हैं। एक नामी गुण्डा यदि शहर में हड़ताल कराना चाहे तो उसके आदेश पर पूरा शहर बन्द हो जाता है विचित्र वातावरण है कि जहॉ हमें टकराने की पहल करनी चाहिये वहॉ तो हम दुबक जाते हैं और जहॉ हमें शान्त रहना चाहिये वहॉ हिंसा में शामिल हो जाते है। बन्दूक और पिस्तौल एक उपकरण मात्र है। परिस्थितियों का आकलन तो आपको स्वयं को करना है। बन्दूक पिस्तौल कायर को साहस प्रदान करती है यह सही है किन्तु यह तो हिंसक प्रवृत्ति को भी साहस प्रदान करती है। चूँकि समाज में हिंसक भावनाऍ लगातार बढ़ रही हैं तो ऐसी भावनाओं में बन्दूक पिस्तौल विस्तार ही करेगी शमन नहीं। आपने जो भी उदाहरण दिये वे काल्पनिक हैं क्योंकि अपवाद स्वरूप ही शस्त्र सम्पन्न व्यक्ति सुरक्षा कर पाता है। इसके ठीक विपरीत अपराधी तत्व बड़े आराम से हथियार मांग कर ले जाते हैं। मैं जिस क्षेत्र का हूँ वहॉ के सारे शस्त्र सरकार ने थाने में जमा करवा लिये क्योंकि वे शस्त्र नक्सली मांग कर ले जाते। यदि सामने वाले आक्रमण कारी को आपके सशस्त्र होने की जानकारी है तो वह डरेगा यह तर्क सही है किन्तु यदि वह और अधिक शक्ति इकट्ठी कर लिया तो मेरा शस्त्र ही उसके काम आयेगा क्योंकि वह तैयार होकर आता है और हम हमेशा तैयार नहीं रहते।

इसलिये खुला शस्त्र देने की नीति सरकार का पलायन मात्र है। यह कोई समाधान नहीं है। पूरे भारत में हम लोगों ने एक शहर रामानुजगंज में प्रयोग करके देखा। हमने शहर के लोगों से कहा कि अपने वैध या अवैध शस्त्र मत रखो। हम सामूहिक सुरक्षा करेंगे। बिना शस्त्र करेंगे। योजना बनी। पुलिस विभाग से समझौता हुआ कि वह पांच प्रकार के अपराध रोकेगी। अन्य सब काम वह खाली हो तो रोके अन्यथा नहीं। पांच अपराधों में पुलिस या कोर्ट घूस नहीं ले सकते। अन्य कार्यो में लेना न लेना वे जाने। अपराधियों से कहा गया कि वे इस शहर की सीमा में अपराध करेंगे तो उनकी सजा निश्चित है। नगरपालिका अपना भी वकील खड़ा करेगी। बाहर के लोगों ने हमारी योजना को सिद्धान्त विपरीत बताया किन्तु हम प्रयोग में सफल रहें। यहॉ तक सफल कि हम अपने क्षेत्र से नक्सलवाद को भी खदेड़ने में सफल रहे। आपका विचार हवाई है जबकि मैं आपको व्यावहारिक बात बता रहा हूँ। यदि पूरे क्षेत्र की आबादी को भी सशस्त्र कर देते तो अपराधों की रोकथाम संभव नहीं थी। हमने क्षेत्र को हथियार मुक्त कराकर प्रशासन से समझौता किया तो सफल हुए। वर्तमान में हमारा प्रयोग क्षेत्र दो हजार वर्ग किलोमीटर का है। आप आइये और इस प्रयोग की सफलता देखिये।

मेरा आपसे निवेदन है कि आप खुला शस्त्र लाइसेंस की वकालत करके प्रशासन को दायित्व मुक्त करने की भूल कर रहे है। समाज में जो हिंसा के प्रति समर्थन बढ़ रहा है उस वातावरण में और वृद्धि होगी। जब वास्तव में ऐसे बल प्रयोग की जरूरत होगी उसके पूर्व ही हमारी कायरता ये हथियार आतंकवादियों तक पहुंचा देगी। अतः आप अपने कथन पर फिर से विचार करिये। यदि संभव हो तो पचीस दिसम्बर से एक जनवरी तक के रामानुजगंज लोक स्वराज्य सम्मेलन में शामिल होकर नई सामाजिक संरचना के प्रयोग पर विचारों का आदान प्रदान करिये।

7.आचार्य पंकज, अध्यक्ष व्यवस्था परिवर्तन मंच

विचार– ज्ञान तत्व अंक दो सौ पांच के प्रश्नोत्तर कम में आपने मेरी सोच पर कुछ संदेह व्यक्त किया जो सच नहीं हैं आपसे खुलकर बात चीत करने में जो बौद्धिक सुख मिलता है उससे मैं अभिभूत हूँ।

आपने मेरे प्रश्न का उत्तर देकर एक ऐसे पथ की ओर इशारा किया है जिसका मैं अनुगामी रहा हूँ। मैं हमेशा सावधान रहता हूँ। काफी दिनों तक छाया की तरह साथ में रहा हूँ। आप अच्छी प्रकार जानते भी हैं कि देशी–विदेशी का चक्कर मुझे कभी नहीं रहा, न तो आज है। पूँजीवाद – साम्यवाद मेरे लिये चालू–चाय की तरह ही है। जिसे आप जैसे चिन्तकों के साथ कभी –कभी चलते–चलाते मजबूरी में पीना ही पड़ता है। आप अपने विचारों में बहुत स्पष्ट हैं जिससे मार्ग–दर्शन प्राप्त होता हैं। यह अंक मुझे आज ही बिलम्ब से प्राप्त हुआ है देश में जिन साथियों को पहले मिला, वे साथी काफी मजेदार हैं। उन्होंने मुझसे तो नहीं– परमादरणीय श्री प्रमोद कुमार वात्सलय जी को चलभाष से बताया कि अंक–205, ज्ञान तत्व में श्री बजरंगमुनिजी ने आचार्य पंकज के प्रश्न का उत्तर ऊट–पटांग ढंग से दिया है अतीत में भी आचार्य पंकज पर गलत–सलत टिप्पणी ज्ञानतत्व में श्री बजरंगमुनि जी छापते रहे हैं। आचार्य पंकज जी को मुनि जी से संवाद नहीं करना चाहिये। सुझावकर्ता साथी का मैं–शुक्रगुजार हूँ। ऐसा पवित्र सुझाव मेरे जैसे अपवित्र के लिये मर्मान्तक पीड़ा दायक है।

जब मैंने परमादरणीय श्री प्रमोद कुमार वात्सल्य जी को प्रश्नोत्तर पढ़ कर सुनाया तो वे हॅस पड़े, स्वाभावानुसार काफी देर तक हॅसते रहे। अभी तक उन्हें यह अंक नहीं मिला था। वात्सल्य जी ने कहा कि "उत्तर साफ करता है कि – राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के साथ–साथ दोनों पैरों से चलकर हीं अभियान पूरा हो सकता है। परिपक्व मस्तिष्क आरोप –प्रत्यारोप से बहुत उपर उठ जाता है। अमेरिका, रूस, चीन कभी भी हमारे आदर्श नहीं थे, न तो आज है। बुद्ध , मार्क्स और गान्धी तीनों को खूब अच्छी तरह से पढ़ा है। बहुत कुछ लिखा भी है। पढ़ना–लिखना यदि गंदी आदत है, तो वह हमारे जीवन में हैं। कोई भी विचार हमेशा चुनौती का विषय बना रहता है।" विचार के गलत सही होने की कसौटी, खुद विचार नहीं हो सकता, क्योंकि विचार तो खुद चुनौती का विषय बन गया है। इसलिये इसकी कसौटी व्यवहार है। जिससे हम प्रमाणित कर सकते हैं कि हमने जो विचार बनाये वे यथार्थ के सामने होने पर निष्फल और बेकार साबित हुये अथवा सफल और सार्थक हुये। व्यवहार ही सत्य की कसौटी है।

हमारा चिन्तन , न तो बाम–पंथी है न दक्षिण–पंथी । वह न तो निषेधवादी वैराग्य है और न प्रगतिशील भोगाशक्ति है। वह बाम और दक्षिण को अतिक्रान्त करते हुये उत्तर–पंथी है और बाम के भी अर्थो में एक अर्थ उत्तर भी है। उत्तर के माने होते हैं दक्षिण के प्रतिकूल। साथ ही "उत्तर" माने होता है उर्ध्व । "उत्तर" के माने होता है समाधान। उत्तर माने होता है "भविष्य" भी। उत्तर के सारे अर्थो को ब्रहमाण्डीय व्यवस्था बीजरूप में समेटे हुये है।

आपके इस विचार से सहमत होते हुये मैंने आर्थिक लोक स्वराज्य एवं अर्थ–पालिका पर एक वैचारिक लेख लिखा था। विचार की दुनिया में लोकप्रिय ज्ञानतत्व में वह चिन्तन–लेख प्रकाशित है, कृपया उसका अवलोकन करने का कष्ट करें। स्थिति काफी स्पष्ट हैं। आर्थिक असमानता की बात देश के सभी राजनीतिक दल उठाते रहते हैं, " ये सब वोट के भिखारी, सत्ता के पुजारी है।" राजनीतिक महत्वाकांक्षा पूर्ति के लिये जो भी आर्थिक असमानता की बात करे, उसकी नीयत में खोट है। व्यवस्था परिवर्तन मंच पूर्ण रूप से सावधान हैं इसीलिये खुलेआम जन्म से ही " जीवन–सुरक्षा–पेंशन" के लिये अपना अभियान चला रखा है। जिसे आपका आशीर्वाद , मार्गदर्शन , रामानुजगंज के प्रस्तावों से प्राप्त है। जीवन को सम्यक् रूप से सुरक्षित रखते हुये "गांधीपथ" से व्यवस्था परिवर्तन करके लोकस्वराज्य की स्थापना संभव है। यही निष्काम योग हैं।

किसी एक सम्मेलन में मैंने आपसे प्रश्न किया था कि लोकस्वराज्य आने पर देश की तस्वीर क्या होगी? आपने कहा था कि– आचार्य पंकज जी मुझे झंझट में डाल दिये है, इनसे ऐसी कल्पना नहीं थी। आज भी वह प्रश्न उत्तर की प्रतीक्षा में तड़प रहा है?

समीक्षा– आप जानते है कि मैं विचार मंथन प्रिय हूँ। आप और हम जब साथ साथ दिल्ली में रहते थे तब खूब विचार मथे जाते थे। कई बार दोनों अपनी अपनी जगह पर डटे रहते थे। अब आपका अभाव खटकता हैं। आपके अभाव की पूर्ति इसलिये नहीं हो पाती है कि मेरी बात मान लेने वाले तो मिल रहे है किन्तु काटने वालों का अभाव है। मंथन और प्रचार बिल्कुल पृथक पृथक हैं। मैं सिर्फ सत्ता के अकेन्द्रीयकरण को ही अपना अन्तिम निष्कर्ष मानकर उसका प्रचार करता हूँ सत्ता के केन्द्रीयकरण के पक्षधर को मैं विरोधी मानता हूँ। अन्य सब प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक ऐतिहासिक साहित्यिक मुद्दों पर मैं खुला विचार मंथन चाहता हूं। मैं प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा पेंशन देने के पक्ष में हूँ। मैं स्वतंत्र अर्थ पालिका के पक्ष में हूँ। किन्तु मैं इन कार्यो के लिये कोई आंदोलन नहीं कर सकता। सिर्फ सहायता मात्र कर सकता हूँ। ऋषिकेष में मैंने पूरी सहायता का वचन दिया और पुनः

सहायक रहूँगा। किन्तु मेरी प्राथमिकता लोक स्वराज्य है और आर्थिक स्वायत्तता दूसरे क्रम पर है। आपकी और वात्सल्य जी की भी ऐसी ही है।

विचार मंथन के लिये यदि आपसे कुछ तीखी चर्चा भी हो तो तब तक अशुभ नहीं जब तक हमारे आपके बीच नीयत में फर्क नहीं इसलिये आप मुझे नया मत समझियेगा।

वामपंथ और दक्षिणपंथ के बीच उत्तर पंथ मेरी खोज न होकर आपकी ही खोज है जो बहुत सटीक शब्द चयन है। हम सब यदि उत्तर पंथ को समझने लग जावें तो कई समस्याएँ अपने आप सुलझ सकती हैं।

हम आप दूर दूर हैं इसका यह अर्थ नहीं कि संवाद में औपचारिकता आ जावे। संवाद यथार्थ होता है। औपचारिकता का निर्वहन विरोधियों के बीच होता है, आपस में नहीं। यदि मेरे आपके बीच कहीं भेद होगा तो गांधी हमारे और आपके बीच में हैं। उसके बाद कोई समस्या नहीं बचेगी।

8.श्री नरेन्द्र सिंह, बनबोई, बुलन्दशहर,उ0प्र0 245411

सुझाव– मैं पिछले एक वर्ष से ज्ञानतत्व पढ़ता हूँ। आप मुख्य रूप से संघ, इस्लाम, इसाइयत और साम्यवाद को बराबर एक समान खतरनाक प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं। ऐसा लगता है कि आप स्वयं को निष्पक्ष प्रमाणित करने के क्रम में चारों को जबरदस्ती एक धरातल पर रखने की खींचतान करते हैं जबकि दुनिया जानती है कि संघ एक राष्ट्रवादी संगठन है और शेष तीन की निष्ठा राष्ट्र के प्रति संदिग्ध है। इस्लाम ओर इसाइयत तो पूरी तरह साम्प्रदायिक भी है। ऐसी परिस्थिति में आपका स्पष्ट दिशा निर्देश न देना उचित नहीं। अस्पष्ट विचारों के कारण समाज में भ्रम फैलता हैं। मैं स्वयं कई बार नहीं समझ पाता। जब इस्लाम, इसाइयत और साम्यवाद की नीयत की समीक्षा करता हूँ तो संघ की कार्यप्रणाली बिल्कुल ठीक दिखती है किन्तु जब संघ परिवार द्वारा पिछले दस वर्षो की प्रगति की समीक्षा करता हूँ तो राष्ट्रवाद का विषय आधारहीन प्रतीत होता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस भ्रम का कारण समाज की ठीक परिभाषा का अभाव है जिस अभाव के कारण समाज व्यक्ति समूह न होकर जाति धर्म भाषा क्षेत्र आदि का संगठित स्वरूप बन गया है।

आपसे समाज को बहुत उम्मीदें हैं आपको अपनी निष्पक्षता प्रमाणित करने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं जैसा कि करने के क्रम में आप संघ को भी लपेट लेते हैं। आशा है कि आप मेरी शंकाओं का समाधान करेंगे।

9. श्री महावीर सिंह जी, नोयड़ा, उत्तर प्रदेश

समीक्षा– आपने मुझे ज्ञान यज्ञ परिवार का राष्ट्रीय उपाध्यक्ष घोषित किया। आप जानते हैं कि मेरे और आपके बीच अनेक मुद्दों पर मतभेद रहे है। फिर भी हम लोक स्वराज्य के मुद्दे पर साथ रहे। स्वराज्य बाबा के आमंत्रण पर हम रामानुजगंज क्षेत्र का सर्वे करने गये तो हमें वहॉ तो लोक स्वराज्य के कोई लक्षण दूर दूर तक नहीं दिखे। हमने देखा कि उन क्षेत्रों में बाहर के गये हुए लोग सुविधा का जीवन जी रहे हैं और गरीब लोग बिल्कुल फटे हाल हैं। लोग न तो लोक स्वराज्य को जानते थे न ही उनका लोक स्वराज्य के कर्ताधर्ताओं पर विश्वास था। स्वराज्य बाबा में लगन और उत्साह था किन्तु उनकी स्वयं की आर्थिक स्थिति दयनीय थी और आप सबकी ओर से उन्हें आर्थिक सहयोग प्राप्त नहीं हो पाया।

अन्तिम दिन हम उनकी झोपड़ी में गये तो हम उनकी हालत देखकर द्रवित हुए। हमें लगा कि कोई समाज सेवी ऐसे वातावरण में भी रहता है और आप या अन्य सम्पन्न लोग उनके विषय में कुछ नहीं सोचतें। जिस तरह आप अन्य खर्च करते रहते हैं उस तरह स्वराज्य बाबा सरीखें सक्रिय कार्यकर्ता की कठिनाइयों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये था। मजबूरन, हमें ही कुछ पहल करनी पड़ी।

मैं सर्वोदय, भारत जनआंदोलन, स्वदेशी आंदोलन आर्य समाज आदि से जुड़ा रहा। ओमप्रकाश जी दुबे के माध्यम से आपके साथ भी जुड़ा। मुझे लगा कि आप सर्वोदय के साथ समन्वय करके चलेंगे। किन्तु जिस तरह आप सर्वोदय की खुलकर आलोचना करते हैं यहॉ तक कि आप विनोबा जी के विषय में भी मनमानी व्याख्या कर देते हैं जो हमारे लिये कष्टकर है। अभी कुछ दिनों पूर्व ही अनेक राष्ट्रीय स्तर के स्थापित समाज सेवकों ने दंतेवाडा तक एक शान्ति मार्च निकाला था जिसमें अरून्धती राय, मेधापाटकर, डा0 बनवारीलाल शर्मा, ब्रम्हदेव शर्मा, स्वामी अग्निवेष आदि शामिल थे। आपने ऐसे शान्ति प्रयास की भी आलोचना की जो उचित नहीं थी। इस प्रकार तो आप वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को ही बनाये रखने के पक्षधरों में शामिल दिखते हैं जो ठीक नहीं।

यही कारण है कि मैंने ज्ञान यज्ञ परिवार से स्वयं को अलग करना ठीक समझा है। आपके साथ व्यक्तिगत संबंध यथावत् हैं और रहेंगे।

उत्तर– आप दोनों ही बहुत नजदीक से हमसे जुड़े रहे हैं आप दोनों दो विपरीत विचार धाराओं की ओर झुके हुए है। इस मामले में मैं यथार्थ वादी हूँ। नरेन्द्र सिंह जी ने अस्पष्टता की बात कहीं जो ठीक नहीं। मैंने बिल्कुल साफ कहा कि मुझे हिन्दू होने पर गर्व हैं सम्पूर्ण विश्व में हिन्दुओं को छोड़कर आज तक कोई ऐसी विचारधारा नहीं जो अपने अनुयायियों को दूसरा धर्म मानने वालों को अपने साथ शामिल करने के प्रयत्नों से रोकती हैं। यदि कोई हो तो वह स्पष्ट करे। अन्तर यह है कि मैं इस एक पक्षीय घोषण को हिन्दुत्व के लिये गर्व का विषय मानता हूँ। सात आठ सौ वर्षो की गुलामी और अनगिनत अन्यायों अत्याचारों के बाद भी हिन्दुओं ने इस नीति में बदलाव नहीं किया। फिर भी हिन्दुत्व कमजोर नहीं हुआ। स्वतंत्रता के बाद हमें यह नीति बनानी थी कि भारत में कानून के अन्तर्गत सर्व धर्म स्वतंत्रता अनिवार्य होगी। कोई भी व्यक्ति किसी अन्य को धर्म परिवर्तन हेतु प्रेरित नहीं करेगा, स्वेच्छा की बात अलग हैं। मुझे दुख है कि संघ परिवार धैर्य नहीं रख सका और उसने हिन्दू राष्ट्र का नारा उछालकर हमारा पक्ष कमजोर कर दिया।

इसी तरह मैं पूरी तरह अहिंसा का पक्षधर हूँ। अहिंसा के नाम पर नक्सलवाद का परोक्ष समर्थन करने वाले तथाकथित गांधीवादियों तक की मैंने आलोचना की है जिसका भाई महावीर सिंह जी ने बुरा माना है। मैं हिंसा के पूरी तरह विरूद्ध हूँ। मैं सरकारी हिंसा की अपेक्षा सामाजिक हिंसा को कई गुना ज्यादा बुरा मानता हूँ। यही कारण है कि मैंने आजाद को फर्जी मुठभेड़ में मारने का भी विरोध नहीं किया क्योंकि आजाद को मारना व्यवस्था की आवश्यकता थी, भले ही वह गैर कानूनी ही क्यों न हो। जब तक नक्सलवाद व्यवस्था परिवर्तन था तब तक उसके साथ मेरी सहानुभूति थी, सर्वोदय की नहीं। किंतु जब से नक्सलवाद सत्ता संघर्ष बना तब से मेरी दूरी बढ़ती गई, सर्वोदय की घटती गई। क्योंकि मुझे न दलगत राजनीति से मतलब है न सत्ता संघर्ष से। आपने जिन शान्ति दूतों की चर्चा की है वे अधिकांश हर लोकसभा चुनाव में चुनाव लड़ने की योजना बनाते हैं। दो वर्ष पूर्व सम्पन्न चुनावों के पूर्व भी जयपुर की बैठक की मुझे पूरी जानकारी है। मैं सत्ता के खेल में हिंसा के प्रोत्साहन के खिलाफ हूँ चाहे वह संघ करे या सर्वोदय। यदि नक्सलवाद समर्थन की आड़ में कुछ लोग सत्ता का खेल खेलना चाहते हैं तो मेरी इसमें रूचि नहीं।

ये मेरे व्यक्तिगत विचार हैं। ज्ञान यज्ञ परिवार के नहीं। क्योंकि ज्ञान यज्ञ परिवार ग्राम सभा सशक्तिकरण तथा लोक स्वराज्य की सहायता तक ही सीमित है। अन्य सभी विचार अपने अपने हैं। सबको विपरीत विचार रखने और प्रकट करने की स्वतंत्रता है। अनेक मित्रों ने ऐसे विपरीत विचार प्रकट भी किये हैं जिनमें आप भी शामिल हैं। मैं आप सब अहिंसा के पूरी तरह समर्थक है। अजमेर वाले सिंगला जी इस मामले में पूरी तरह मेरे विरूद्ध हैं। किन्तु उन्होंने तो मेरे उपर कभी ऐसा दबाव नहीं बनाया। ज्ञान यज्ञ परिवार का उद्देश्य विपरीत विचारों को एक साथ बैठकर स्वतंत्र विचार मंथन हेतु प्रेरित करना है। लोक स्वराज्य का अर्थ प्रत्येक इकाई को अपनी इकाईगत सीमा में रहते हुए गल्ती करने तक की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मुझे भी व्यक्तिगत रूप से लिखने की स्वतंत्रता है। आज तक न गांधी ने कभी किसी को रोका न ठाकुरदास जी बंग ने। अब नये नये गांधीवादी और संघ समर्थक मित्र विचारों का उत्तर देने की अपेक्षा नाराजगी व्यक्त करते हैं यह उचित नहीं। यदि हमारे सर्वोदयी मित्रों को सर्वोदय की और संघी भाइयों को संघ की प्रशंसा करने की ज्ञान यज्ञ परिवार में छूट है तो मुझे ऐसी आलोचना पर बुरा क्यों लगना चाहिये। यदि मेरी आलोचना गलत है तो मेरे और आपके विपरीत विचार पाठकों के बीच आने दीजिये।

ज्ञान यज्ञ परिवार बिल्कुल स्वतंत्र इकाई है जो स्वतंत्र विचार मंथन तक सीमित है। सर्वोदय और संघ संगठन हैं। आप चाहें तो सबमें रह सकते हैं। ज्ञान यज्ञ परिवार ऐसे अलग अलग विचारों के लोगों को एक साथ बैठकर स्वतंत्र विचार मंथन का नाम है। वहॉ पूंजीवादी पूंजीवाद का समर्थन कर सकता है और साम्यवादी साम्यवाद का। वहॉ सर्वोदय की भी आलोचना संभव है और संघ की भी। वहॉ कोई प्रस्ताव पारित नहीं होता। वहॉ कोई कार्यक्रम या योजना नहीं बनतीं। वहॉ जितनी बोलने की छूट है उतनी सुनने की मजबूरी भीं। यदि आप सर्वोदय या संघ की प्रशंसा कर सकते हैं किन्तु आलोचना की छूट नहीं दे सकते तो ऐसे ज्ञान यज्ञ परिवार से दूरी बनाना ही उपयुक्त है। ओम प्रकाश जी दुबे ने ज्ञान यज्ञ परिवार को लोक स्वराज्य संघ के अन्तर्गत लाने की कोशिश कीं। चार पांच वर्षो तक दिल्ली में मुझे सर्वोदय और गांधी विनोबा समझाते रहे। अन्त में नाराज होकर भी दबाव बनाया किन्तु मैं ऐसे किसी दबाव में नहीं आया। ज्ञान तत्व का पूर्वार्ध स्वतंत्र विचार मंथन तक सीमित है। उत्तरार्ध अन्य गतिविधियों के लिये था। जब मेरे दिल्ली से आने के बाद उत्तरार्ध दुबे जी लिखने लगे तो उन्होंने उत्तरार्ध में गांधी विनोबा की बड़ी बड़ी किताबें छापनी शुरू कर दी। कई पाठकों ने आपत्ति की तब मजबूर होकर हमें रोकना पड़ा। ज्ञान यज्ञ परिवार किसी विचारधारा के प्रचार के लिये उपयोग में नहीं आ सकता। सबको स्वतंत्रता है और वहीं स्वतंत्रता मेरी भी है। यदि कोई लोक सेवक है और खादी का प्रचार करे तो उसे छूट हैं। साथ ही यदि कोई खादी का विरोध करे तो उसे भी छूट है। यही है ज्ञान यज्ञ परिवार।

आपने लिखा है कि जो जितना ही आपके निकट है आप उसकी उतनी ही ज्यादा आलोचना करते है। यह बात सच है। आपने ही मुझे सिखाया है कि पहले स्वयं की समीक्षा करें तब उसके बाद दूसरों की। यदि मैंने आपके सुझाव को जीवन में उतारा है तो बुरा क्या है।

मैं आपको आश्वस्त करूँ कि ग्राम सभा सशक्तिकरण और लोक स्वराज्य की विचार धारा तो संगठन की है। इसके अलावा सब व्यक्तिगत है। मैं किसी संगठन का सदस्य नहीं। यदि आपको मेरी सहायता न चाहे तो न लें। लोक स्वराज्य संघ अलग है जिसके आप सब सदस्य हैं। मैं नहीं। ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान बिल्कुल पृथक संगठन है। मैं सबके साथ हूँ पर सदस्य नहीं। मंथन जारी रखना चाहिये। भले ही आपने ज्ञान यज्ञ परिवार के सक्रिय सदस्य में से अपना नाम कटवा लिया है किन्तु जब तक आप विचार मंथन से जुड़े हैं तब तक हम आपको कभी पृथक नहीं समझेंगे। आप रेकार्ड में रहें या न रहें।

आपने रामानुजगंज क्षेत्र में घूमकर वहॉ की गरीबी, आर्थिक विषमता, शोषण आदि को देखा हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो वहॉ नक्सलवाद भी नहीं फलता फूलता। हम सबने ऐसी स्थिति का जीवन भर विरोध किया है। इस विरोध के ही परिणाम स्वरूप मध्यप्रदेश सरकार ने सन् छियान्नवे में मुझे नक्सलवादी घोषित किया था। हिंसा और अहिंसा के बीच मतभेद होने पर मैं नक्सलवाद विरोधी हुआ। उसके बाद नक्सलवाद कमजोर हुआ है। यदि नक्सलवाद कमजोर हुआ है तो हमारी जिम्मेवारी है कि हम अहिंसक व्यवस्था परिवर्तन को मजबूत करें। यह कार्य तो अब तक शुरू ही नहीं हुआ हैं। तेरह नवंबर से एक माह का एक सौ तीस गांवों में दौरा होगा जो इस योजना की शुरूआत है। समस्या गंभीर है। आप सुधरा हुआ परिणाम देखने नहीं गये थे। आप स्थिति की भयावहता देखने गये थे। आप लोगों ने स्थिति की भयावहता का जो चित्र खींचा और अपने को अलग किया उससे हमें और अधिक सक्रिय होने की प्रेरणा मिली। जामवंत हनुमान जी को प्रेरित करने आये थे और समुद्र की भयावहता का वर्णन करके चले गयें। भले ही कुछ मित्र निराश हो गये हों किंतु कई गुना अधिक साथी प्रोत्साहन के लिये भी तैयार हैं। दुर्गा प्रसाद जी, स्वराज्य बाबा आदि पूरी तरह सक्रिय हैं मुझे तो ऐसा लगता है कि आप भी कभी हार मानने वाले नहीं दिखे। पहली बार आपके पत्र से निराशा का भाव दिखा। ईश्वर करे यह भाव क्षणिक हो। पचीस दिसम्बर से एक जनवरी तक के लोक स्वराज्य सम्मेलन में और आगे की योजना बननी ही है। आप, दुबेजी, स्वराज्य बाबा, दुर्गाप्रसाद जी आदि सब साथी रहेंगे ही। तब और चर्चा हो जायेगी।

आपने स्वराज्य बाबा की आर्थिक कठिनाइयों की चर्चा कीं उन्होंने पूरा जीवन ऐसे ही त्याग तपस्या की है। यही कारण है कि वे आज भी हम सबके बीच सम्मानित हैं। वे चालीस वर्षो से हमारे साथ हैं, आज भी हैं और आगे भी रहेंगे। उनके और मेरे द्विपक्षीय आर्थिक संबंध कैसे हैं यह हमारा आन्तरिक मामला है। मैं उसकी चर्चा नहीं करना चाहता न ही उन्होंने आपसे की है। यह सही है कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान शुरू होने में देर हुई। आप जानते हैं कि अब मेरे पास कोई पैसा तो बचा नहीं हैं न ही मैं परिवार से मांग सकता हूँ। मैं दिल्ली में था तो आप लोग आर्थिक सहायता करते थें वह भी अब नगण्य है। मैंने जो पचीस लाख रूपया ट्रस्ट के नाम किया है उसके व्याज स्वरूप जो मिलता है वही कुल पूंजी हैं। उससे अधिक पैसा तो ज्ञान तत्व पर ही लग जाता है। इसलिये कठिनाई स्वाभाविक है। अब कुछ लोग आर्थिक सहायता हेतु स्वयं आगे आ रहे हैं। यही कारण है कि काम चार माह पिछड़ गया। मेरी जो यात्रा जुलाई में शुरू करनी थी वह नवंबर में हो रही है। आशा है कि आप मेरी आर्थिक मजबूरी को समझेंगे। स्वराज्य बाबा आपके संगठन के सदस्य हैं, ज्ञान यज्ञ परिवार के नहीं ं आप लोगों ने अब उनकी देख भाल शुरू की है और आर्थिक सहायता शुरू की है इसके लिये आप सब धन्यवाद के पात्र हैं मेरा और उनका तो व्यक्तिगत संबंध है संस्थागत नहीं।

अन्त में मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यदि दूसरों की वैचारिक स्वतंत्रता आपको बाधक नहीं है तो आप हम ज्ञान यज्ञ परिवार में मिलकर काम कर सकते हैं और यदि दूसरों की वैचारिक स्वतंत्रता आपके किसी संगठन में समस्या पैदा करती है तो वह आपकी स्वतंत्रता है।

नोट– ज्ञान तत्व के प्रत्येक पाठक के लिये एक निश्चित क्रमांक दिया गया है ,जिससे रिकार्ड रखने में सुविधा हो। ऐसा क्रमांक आपके ज्ञान तत्व पर भी अंकित होगा।साथ ही अब जो भी शुल्क प्राप्त होगा वह हर अंक में प्रकाशित कर दिया जायेगा। जिससे पाठकों को भी जानकारी रहे। यदि शुल्क भेजने के बाद भी अगले अंक में नाम प्रकाशित होना छूट जाये तो सूचित करने की कृपा करें। इस पखवाडे में प्राप्त राशि इस प्रकार है।

(1)श्री बी0एन0 सिंह, बोगाडे, मैसूर–500/–
(2)श्री अशोक जी0 लिपरे,धारवार ,कर्नाटक–500/–
(3)श्री डी0आर0 प्रत्युस कुमार दुवे,इंदौर,म0प्र0–100/–
(4)श्री डी0आर0गुलाब चंद्रा कालाडिया,चेन्नई– 100/–
(5)श्री राजेश प्रताप सिंह ,पचपेडवा,बलरामपुर,उ0प्र0–100/–